० संयुक्तांक

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक संकलन पत्रिका

युगपुरुष

दिसं.-जन.७४-७५

मूल्य : २.५०

विवशता : समय और शाश्वत अस्तित्व

●

'युक्रांद' का यह दिसम्बर-जनवरी का संयुक्त अंक हम बहुत विलम्ब से प्रेषित कर पा रहे हैं।

समय का यह विलम्ब हमारी विवशता रही है—लाख हमारी चाहत और आपकी चाहत के भी यह हो गया।

किन्तु, दूसरी ओर एक सनातन सत्य हम सबके सामने है और वह है—पूज्य भगवान श्री की वाणी का सतत आनंदोत्सव भौतिक जगत में समय के अन्तराल से ही सही, पर शाश्वत अस्तित्व के जगत में सारी सीमाओं के पार का जो सृजन 'युक्रांद' ने संजोया है, उसे दृष्टिगत रखते हुए आप हम सब मिलकर इस विलम्ब को सह्य करेंगे,

यही भगवत कामना।

प्रभु चरणों में समर्पित—

जबलपुर,
२१-२-७५

अरविन्दकुमार

युक्रांद सहायता निधि के अन्तर्गत प्रकाशित

गीता अध्याय ११

(भगवान श्री कृष्ण का विराट स्वरूप दर्शन)

मूल्य : २२ रु०

अपना आदेश वी० पी० पी० द्वारा देकर हमें सेवा का अवसर दें।

☐ आकर्षक कमीशन एवं पोस्टेज फ्री व्यवस्था ☐

अरविन्द कुमार, 'युक्रांद' सहायता निधि, ७९० राइट-टाउन, जबलपुर

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

युगक्रांति

वर्ष – ६ अंक – ६-७

मूल्य एक प्रति २.५० रु.
" वार्षिक : १५-०० रु.

दिसं.-जन. १९७४-७५

मानसेवी संपादक मंडल :

○ अरविन्दकुमार

○ डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.

○ आलोक पाण्डे

□ स्वामी धर्म सरस्वती, व्यवस्थापक

ओशो टाइम्स

दिसं.-जन.

संयुक्तांक

अनुक्रमणिका

प्रवचन : संकलन

मिट्टी का दिया (बोध-कथाओं से)	:	३
बोध वचन	:	४
नहीं राम बिन ठांव	:	५
भगवान श्री रजनीश दर्शन : मौलिश्री के झरोखे से	:	३०
अनमोल वचन	:	३६
बिन बाती बिन तेल	:	३७
हम भी क्या खाक स्वामी हुए	:	५६
भगवान श्री और मैं	:	६७
त्राटक ध्यान	:	७५
मिलें मुल्ला नसरुद्दीन से	:	७६

गीत : काव्य

विश्व के मानव हृदय-पट खोल लो	:	२६
भक्ति के ये रंग	:	३०
मुक्तक	:	३५
मैं कितना असहाय हूं	:	५८
संकल्प	:	६४
तुम न आते तो	:	६७
आल्हाद : प्रार्थना	:	७४
एक दूसरी आकाश गंगा	:	७८

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्दकुमार, ७६०, राइट-टाउन, जबलपुर.

मुद्रण : अशेष प्रिन्टर्स, ७८१, राइट टाउन, जबलपुर. फोन 2957 P.P.

बोधकथाओं से

मिट्टी का दिया

सत्य की एक किरण भी बहुत है। ग्रंथों का भार जो नहीं करता है, सत्य की एक झलक भी वह कर दिखाती है। अंधेरे में उजाला करने को प्रकाश के ऊपर बड़े-बड़े शास्त्र किसी काम के नहीं, एक मिट्टी का दिया जलाना इतना ही पर्याप्त है।

राल्फ वाल्डे इमरसन के व्याख्यानों में एक बूढ़ी धोबिन निरंतर देखी जाती थी। लोगों को हैरानी हुई: एक अपढ़ गरीब औरत इमरसन की गम्भीर वार्ताओं को क्या समझती होगी? किसी ने आखिर उससे पूछ ही लिया कि उसकी समझ में क्या आता है? उस बूढ़ी धोबिन ने जो उत्तर दिया वह अद्‌भुत था। उसने कहा: 'मैं जो नहीं समझती उसे तो क्या बताऊं लेकिन एक बात मैं खब समझ गई हूं और पता नहीं कि दूसरे उसे समझे हैं या नहीं। मैं तो अपढ़ हूं और मेरे लिए वह एक ही बात काफी है। उस बात ने तो मेरा सारा जीवन ही बदल दिया है और वह बात क्या है? वह है कि मैं भी प्रभु से दूर नहीं हूं; एक दरिद्र अज्ञानी स्त्री से भी प्रभु दूर नहीं है। प्रभु निकट है—निकट ही नहीं, स्वयं में है। यह छोटा सा सत्य मेरी दृष्टि में आ गया है और अब मैं नहीं समझती कि इससे भी बड़ा कोई और सत्य हो सकता है!'

जीवन बहुत तथ्य जानने से नहीं, किन्तु सत्य की एक छोटी सी अनुभूति से ही परिवर्तित हो जाता है और जो बहुत जानने में लगे रहते हैं, वे अक्सर सत्य की उस छोटी सी चिनगारी से वंचित ही रह जाते हैं, जो कि परिवर्तन लाती है और जीवन में बोध के नये आयाम जिससे उद्‌घाटित होते हैं। ○

बोध वचन

- जो मुखर है वह नहीं जानता और जो ज्ञानी है वह नहीं बोलता।
- स्वयं के ईश्वरत्व से अस्वीकार ही पाप है।
- आनन्द की निसर्ग जात प्यास ही धर्म की जन्मदात्री है।
- यह जानना कि जगत अभिनय है, जगत से मुक्त हो जाना है।
- संन्यास नया जन्म है; स्वयं में, स्वयं से, स्वयं का।
- शून्य होने का पुरुषार्थ ही एकमात्र पुरुषार्थ है।
- बाह्य की सार्थकता का आभास संसार है।
  बाह्य की व्यर्थता का बोध संन्यास है।

युक्रांद का आगामी अंक

'बोधि-दिवस' विशेषांक

सुविज्ञ प्रेमी साधकों से निवेदन है कि उक्त अंक हेतु निम्नांकित स्तम्भों के अन्तर्गत हमें १० मार्च ७५ तक अपनी रचनाएं प्रेषित कर अनुग्रहीत करें :

★ भगवान श्री की अनंत आयामी जीवन दृष्टि और हमारी मानसिक कुण्ठायें।

★ आत्म-ज्ञान उपलब्धि पर प्रेरक गीत।

★ अज्ञान-अविवेक से जागृति की ओर साधना सूत्र।

★ अन्य प्रेरक एवं रोचक तथ्य।

निवेदक :

सम्पादक 'युक्रांद'
७९०, राइट-टाउन, जबलपुर

नहीं राम बिन ठांव

▽

पूज्य भगवान श्री रजनीश जी की प्रवचन-माला 'नहीं राम बिन ठांव' के अन्तर्गत् दिया गया चौथा प्रवचन, श्री रजनीश आश्रम, पूना दिनांक २८ । ५ । १९७४

△

O संकलन एवं संपादन
स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व
पूना

प्रश्नकर्ता—

सुकरात के बारे में आप बताते हैं कि जिस दिन उसे ज्ञान की घटना घटी वह वृक्ष के नीचे खड़ा था। कृष्णमूर्ति के जीवन में भी इसी तरह का उल्लेख है और आप स्वयं भी ज्ञान के दिन गृह से निकल कर वृक्ष पर गये थे तो क्या वृक्ष का ज्ञान की घटना से कोई इथोथेरिक संबंध है ? और यह भी समझायें ज्ञान जब आकस्मिक रूप से घटता है तो आपको इसकी पूर्व सूचना कैसे मिली थी जो आप घर से निकलकर वृक्ष पर गये थे ?

भगवान श्री :

ज्ञान का कोई भी संबंध किसी बाह्य वस्तु से नहीं। हो भी नहीं सकता। ज्ञान है आंतरिक घटना। आप में घटती है और आपके कारण ही घटती है, रुकती है तो भी आपके ही कारण, नहीं घट पायी आज तक तो भी आपके ही कारण, आपके अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं अज्ञान के लिये, इसलिये ज्ञान के लिए भी आपके अतिरिक्त और कोई भी कारण नहीं बन सकता। ध्यान रखें, जिस कारण घटना रुकती है उसी कारण सहायता मिल सकती है। कोई वृक्ष आपके अज्ञान का कारण नहीं है, बोधि वृक्ष बुद्ध के ज्ञान में बाधा नहीं था तो सहयोगी भी नहीं हो सकता। वृक्ष का कोई जुम्मा नहीं। बुद्ध का वृक्ष से संबंध भी क्या ? बुद्धत्व नहीं घटा तो खुद बुद्ध ही कारण थे बुद्धत्व घटा तो भी बुद्ध ही कारण थे। इसे तो पहले आधारभूत सिद्धांत की तरह समझ लें, क्योंकि हमारे मन की आम वृत्ति है उत्तर-दायित्व को किसी पर छोड़ना, बुरा

हो तो हम सोचते हैं कोई और शायद तारे या नक्षत्र, परिस्थिति, लोग, भला हो तो भी हम सोचते हैं कहीं और हमसे उसका स्रोत है अलग। मन की इस आदत का कारण है, इससे मन खुद जिम्मेवारी से मुक्त हो जाता है। स्वयं का दायित्व शून्य हो जाता है। कोई भाग्य का नाम लेता है, कोई परमात्मा का, कोई कहता है भाग्य में जब होगा तब घटेगा। इससे आपको कुछ करने का, कुछ दिशा में यात्रा करने की यह श्रम उठाने का प्रश्न नहीं उठता और परमात्मा की जब मर्जी होगी तब होगा। आपके अतिरिक्त और किसी की मर्जी न तो साथी है, न विरोधी है। आपकी मर्जी के अतिरिक्त और कोई भाग्य नहीं, पर फिर भी बुद्ध वृक्ष के नीचे थे जब ज्ञान घटा, सुकरात भी एक वृक्ष से टिका हुआ खड़ा था, महावीर भी एक वृक्ष के पास थे। तो क्या कारण होगा यह सारी घटनाएं सांयोगिक नहीं हो सकती कारण केवल इतना है जैसा मैं कल आपको कह रहा था व्यक्ति के ऊपर पहली पर्त है संस्कृति की, समाज की, संस्कार की, दूसरी पर्त है प्रकृति की, और तीसरा जो आधारभूत स्वभाव है वह परमात्मा का। जैसे ऐसा समझें संस्कृति ऊपरी पर्त है, प्रकृति उससे गहरी दूसरी पर्त है और स्वभाव, स्वरूप आधार है या ऐसा समझें कि स्वरूप है केन्द्र, स्वभाव है केन्द्र, प्रकृति उसकी परिधि और उस प्रकृति के ऊपर था संस्कारों का जाल। वृक्ष केवल प्रकृति का प्रतीक है। यह सारे लोग संस्कृति और समाज को छोड़कर वन में चले गये इसे प्रतीक के रूप में समझें। यह सारे लोग संस्कार को छोड़ कर प्रकृति में चले गये तो घटना प्रकृति में घटी, संस्कृति में नहीं घट पायी, घटना वहां घटी जहां मनुष्य का किया हुआ भी न था, जहां मनुष्य का कोई चिन्ह न था हस्ताक्षर न थे। जहां मनुष्य के नियम विधियां मनुष्य का बनाया हुआ कृत्रिम जाल बिल्कुल न था। वहां घटना घटी पर वह घटना का कारण नहीं है। वह लोग संस्कृति से हटे और प्रकृति में चले गये और फिर प्रकृति में इन्होंने प्रकृति से हटने को साधा और प्रकृति को भी छोड़ा। संस्कृति को छोड़ के तो जंगल जा सकते हैं फिर जंगल को छोड़ के कहां जाइयेगा। संस्कृति और प्रकृति दोनों बाहर हैं तो संस्कृति से प्रकृति में जा सकते हैं, प्रकृति से संस्कृति में वापिस आ सकते हैं लेकिन अगर दोनों को छोड़ना हो तो कहां जाइयेगा फिर बाहर जाने का उपाय नहीं, भीतर जाने का ही उपाय बचता है। समाज को छोड़ के हिमालय चले जायें, हिमालय को छोड़ के वापिस नगर

लौट आयें तो आप दोनों ही बाहर हैं। जो व्यक्ति संस्कार को छोड़कर प्रकृति के जगत में गया अब कहां जाये ? अब वह प्रकृति को भी छोड़ेगा, आंख बंद करेगा, अपने भीतर जायेगा। तो पहली यात्रा है संस्कृति से प्रकृति और दूसरी यात्रा है बाहर से भीतर। यह घटनायें प्रकृति में घटीं, प्रकृति में घट सकती थीं क्योंकि वहां एक दूसरी यात्रा शुरू होगी। प्रकृति एक पड़ाव है, स्वभाव और संस्कार के बीच, वहां थोड़ी देर विश्राम जरूरी है। यह वृक्ष से नीचे विश्राम करते हुये बुद्ध पुरुषों की जो कथा है संस्कार छोड़कर, समाज छोड़कर, प्रकृति के नीचे विश्राम करते हुये लोगों की कथा है फिर वहां से आगे की यात्रा शुरू होती है वह भीतर की तरफ है। बुद्धत्व वृक्ष के नीचे नहीं घटता ▶बुद्धत्व तो स्वयं के भीतर घटता है, वृक्ष पड़ाव था।◀ ऐसा समझ में आ जाये तो आपकी साधना का पथ भी सुगम हो जायेगा। पहले संस्कृति को साफ करना है जो मनुष्य ने लिखा है आपके ऊपर उसको हटा देना है उसके हटते ही आप वृक्ष के नीचे आ जायेंगे, प्रकृति में आ जायेंगे।

प्रकृति में आने का अर्थ है जैसे शुद्ध बच्चा बालपन, भोलापन, वह सब गणित, होशियारी, चालाकी समाज ने दी थी छूट गई और एक होश का एक पवित्रता का उदय हुआ, अब आप न तो बुरे हैं न भले हैं। कोई वृक्ष बुरा या भला नहीं, किसी वृक्ष को आप साधु असाधु में नहीं बांट सकते। अगर आप एक वृक्ष के नीचे बैठे हों और वह आपके सिर पर फल गिरा के चोट भी पहुंचा दे तो भी आप यह नहीं कह सकते कि यह दुष्ट है। वृक्ष आपके ऊपर गिर जाये और आपकी हत्या हो जाये तो भी कोई नहीं कहेगा कि यह हत्यारा है क्योंकि वृक्ष की चेतना अभी विभाजित नहीं, बुरे और भले में। अगर आप वृक्ष के नीचे गये तो यह संयोग है वृक्ष जिम्मेदार नहीं क्योंकि वृक्ष की मनसा आपको मारने की नहीं थी। प्रकृति में आने का अर्थ है बुरे और भले की धारणा से पीछे हट जाना, वहां पहुंच जाना जहां शुद्ध निर्विकार प्रकृति है, जहां कोई द्वंद्व नहीं, जहां कोई चुनाव नहीं, जहां अपनी कोई मनसा नहीं, जहां जो हो रहा है, उसका स्वीकार है, जहां हम नियन्त्रण नहीं करते सिर्फ बहते हैं, यही है वृक्ष, इसी वृक्ष के नीचे बुद्धत्व घटता हुआ मालूम पड़ता है और जब भी आप मनुष्य से हटते हैं तभी आप हल्के हो जाते हैं। शायद आपको ख्याल में न आया हो कि पहाड़ पर जाकर जो शांति मिलती है वह पहाड़ के कारण

नहीं मिलती, मनुष्य से हटने के कारण मिलती है। आप अकेले एक रास्ते पर घूमने निकले हैं कोई भी रास्ते पर नहीं, फिर अचानक एक आदमी रास्ते पर आ जाता है आप तत्क्षण बदल जाते हैं आपकी चाल बदल जाती है आपकी आंख बदल जाती है, आपके मन पर एक नया बोझ आ जाता है, समाज प्रविष्ट हो गया। अभी तक आप अकेले थे, वृक्ष थे पक्षी थे आकाश था, तारे थे, आप अकेले थे कोई आपके ऊपर निर्णय लेने वाला नहीं था कि आप गलत की ठीक, की चाल उचित या अनुचित, आप चल रहे थे अपनी मौज में गीत गुनगुना रहे थे, हंस रहे थे अकेले थे, यह जो एकाकीपन था इसमें आप छोटे बच्चे की भांति हो गये, और हो सकता है अपने से बात कर रहे हों, मुंह बिचका रहे हों लेकिन एक आदमी अचानक रास्ते पर आ गया सब बदल गया। बचपन खो गया आप वापिस लौट आये अपने गणित, अपने हिसाब में, यह आदमी क्या कहेगा ? समाज मौजूद हो गया अब आप ऐसा व्यवहार करेंगे जैसा समाज चाहता है अन्यथा आप विक्षिप्त मालम होंगे। अब आप संभल के चलेंगे, शिष्टाचार सभ्यता सब वापिस लौट आई। एकांत में, अकेले में जो सुख मिलता है वह समाज से छुटकारे का सुख है, क्योंकि समाज एक सदा बना रहने वाला कारागार है जो सब तरफ मौजूद है। मेरे पास लोग आते हैं कहते हैं ध्यान में रस आता है, आनंद आता है पर कोई देख रहा है इससे हम पूरे नहीं उतर पाते। कोई देखेगा तो क्या कहेगा। इससे बाधा खड़ी होती है। वह दूसरे की आंख निर्णायक है, क्योंकि दूसरा सोचेगा तुम्हारे सम्बन्ध में उसका कुछ मन्तव्य रहा है तो बदलेगा, सोचा था तुम भले आदमी थे, सोचा था तुम संस्कारी, सोचा था कि तुम सत्य हो और तुम को रोते चीखते चिल्लाते देखा तो उसकी धारणा तुम्हारे संबंध में बदल जायेगी और हम लोगों के मन से जीते हैं उनका 'ओपिनियन' बड़ा मूल्यवान है क्योंकि साथ जीना है, कल इस आदमी से काम करवाना होगा तो वह दफ्तर में भीतर ही नहीं आने देगा जिससे आप नमस्कार करोगे तो वह बच के निकल जायेगा क्योंकि कहीं कोई देख न ले कि इस पागल से इनका सबंध है। दोस्ती है, मित्रता है। पहचान है तो जरूर इसमें भी कुछ पागलपन होगा। मन का बड़ा डर है और समाज मन का आखिर जाल है हमारे चारों तरफ। एक महिला ने मुझे आकर कहा कि जाती हूं ध्यान देखने लेकिन वहां कर न सकूंगी क्यों कि वहां सौ दो सौ देखने वाले लोग इकट्ठे हो जाते हैं उनमें से कई लोग

परिचित हैं। पश्चिम से आने वाले साधक जितनी सरलता से ध्यान कर पाते हैं उतना आप नहीं कर पाते। इसका कारण है कि यहां उनका कोई परिचित नहीं है और आपके मन का उन्हें कोई मूल्य नहीं, आप से कुछ लेना-देना नहीं। आप भी इंग्लैंड या अमरीका में जायें तो इतने ही आनंद से ध्यान कर सकते हैं क्योंकि क्या प्रयोजन है, वह जो समाज है, आपका समाज नहीं। वे जो लोग हैं न होने के बराबर हैं, उनकी आंखें भी निर्णय लें आपका क्या बिगाड़ पायेंगी पर जो आंखें आपको पहचानती हैं जिनसे आपका सम्बन्ध है जिनसे आपका लेना-देना है जिनसे आपका व्यवसाय है उनसे डर है उनसे स्वार्थ को नुकसान पहुंच सकता है और उनकी आंखों में आपकी जो छवियां हैं वह बदलें तो आपको बैचेनी होगी, क्योंकि आपकी अपने पास अपनी तो कोई समझ नहीं है, दूसरे जो आपको समझते हैं वही आप अपने को समझते हैं, अगर दूसरे कहते हैं आप बड़े सुन्दर हैं तो आप बड़ सुन्दर हैं और दूसरे कहते हैं कि आप भले हैं, सज्जन हैं तो आप समझते हैंकि आप भले और सज्जन हैं और दूसरे अगर समझने लगें आप पागल हैं तो ज्यादा दिन नहीं लगेंगे कि आपको भी शक शुरू हो जायेगा ज्यादा देर नहीं लगेगी कि आप भी मानने लगे कि आप पागल हैं। मनसविद कहते हैं कि हम बहुत से बच्चों का विकास रोक देते हैं क्योंकि बचपन से ही हम उनकी तरफ इस तरह देखते हैं जैसे वे मूढ़ हैं। अगर आप एक बच्चे को निरन्तर कहते हैं कि तू मूढ़ है, तेरे में बुद्धि नहीं, कब तुझ में बुद्धि आयेगी तो उसमें कभी भी न आयेगी और ध्यान रहे यह पाप आप कर रहे हैं उसमें बुद्धि न आने का। उसको भी धारणा पक्की हो जायेगी कि जब पिता कहते हैं तो ठीक कहते होंगे और जब मां भी कहती है तो ठीक ही कहती है और जब स्कूल का गुरू भी कहता है तो ठीक ही कहता होगा। जब सभी मानते हैं कि मैं मूढ़ हूं तो यह बच्चा अपने को मूढ़ सिद्ध करने में लग जायेगा क्योंकि इतने लोगों की धारणा तोड़ना ठीक नहीं, इतने लोग जो कहते हैं ठीक ही कहते होंगे और जब भी यह मूढ़ सिद्ध होगा तो यह कहेगा कि यह होने ही वाला था क्योंकि मैं मूढ़ हूं सभी मुझे मूढ़ मानते हैं। मनस्विद कहते हैं कि कोई भी धारणा बार-बार दोहराई जाये तो चित्त में बैठ जाती है और परिणामकारी है जो समाज आपके संबंध में कहता है उस से आपने अपनी प्रतिभा का निर्माण किया है। आप उस प्रतिमा के लिये लोगों की आंखों पर निर्भर हैं। वह

प्रतिमा उधार है। उस प्रतिमा से केवल वे मुक्त हो सकते हैं जिन्होंने अपनी वास्तविक छवि का अविष्कार कर लिया हो जिन्होंने ठीक से पहचान लिया हो कि मैं कौन हूं? आत्मज्ञानी ही उधार प्रतिमा से मुक्त हो सकता है और उधार प्रतिमा को जब तक आप न तोड़ें तब तक आत्मज्ञानी नहीं हो सकते। इसलिये महावीर या बुद्ध वन की तरफ चले जाते हैं। ◄ वह जंगल का आकर्षण नहीं है आपका विकर्षण है। ► पहाड़ नहीं बुला रहे हैं आप हटा रहे हैं। पहाड़ प्यारे हैं क्योंकि वे निर्णय नहीं करते अगर वहां अलमस्त हो के नाचेंगे तो कोई पहाड़ न कहेगा कि यह पागल है; वृक्ष संतों जैसे हैं वे आपके संबंध में कोई विचार नहीं करते और मंतव्य जाहिर नहीं करते। आप बैठे हों ठीक, रोते हों, हंसते हों सब ठीक। वृक्ष को आप स्वीकार हैं जैसे आप हैं वृक्ष आपके होने में किसी तरह की बाधा न देगा लेकिन आदमी बहुत विचित्र है आदमी स्वीकार ही नहीं करता कि आपके भी होने का कोई स्वातंत्र्य है आप अपने जैसे होने के अधिकारी हैं। आदमी कहता है मैं बाधा डालूंगा, मैं तुम्हें बनाऊंगा, हर आदमी एक दूसरे को बनाने में लगा है पत्नी पति को संभालने में लगी है। पति पत्नी को संभालने में लगा है, बाप बेटे को संभाल रहा है। बेटे भी बाप को संभाल रहे हैं एक दूसरे की नजरें सैनिकों की तरह पहरा दे रही हैं। आंखें नहीं हैं संगीनें हैं और उनसे हम मंतव्य जाहिर कर रहे हैं ठीक या गलत, निंदा-प्रशंसा चारों तरफ जारी है इस जाल के बीच स्वयं को पाना बड़ा कठिन है इसलिये लोग जंगल की तरफ हट गये इसलिये बुद्ध को राजमहल छोड़ देना पड़ा, ध्यान रहे मेरा जोर इस पर है कि राजमहल छोड़ने का सवाल नहीं रहा है यह जो भीतर हमारा संस्कारों का जाल है यह राजमहल से इस बुरी तरह जुड़ा है कि राजमहल छोड़े बिना टूटेगा नहीं। राजमहल छोड़ के भी टूट जाये तो काफी। डर तो यह है कि शायद राजमहल के बिना भी पीछा करेगा। बुद्ध अपना महल छोड़ दिये तो जिस राज्य में प्रवेश करते थे उसी राज्य का सम्राट उनके पास आके प्रार्थना करता था कि यह आप क्या कर रहे हैं, अगर पिता से न बनती हो क्योंकि पिता के मित्र थे बाकी राजा बिहार के, अगर पिता से न बनती हो तो मेरा राजमहल है, मेरी युवा लड़की है विवाह कर लें, आधा-राज्य संभाल लें पर यह शोभा नहीं देता राजा के पुत्र और भिखारी की तरह घूमना। यह शोभा नहीं देता, पिता से न बनती हो, कोई बात नहीं हम हैं पिता के मित्र हैं तुम्हारे पिता जैसे,

बुद्ध हंसते थे पिता से बनने न बनने का कारण नहीं, राजमहल छोड़ने न छोड़ने की बात नहीं यह अपने को बदलने की बात है और जब पिता के महल में अपने को न बदल सका तो तुम्हारे महल में बदलना और भी मुश्किल होगा। परायों के बीच बदलना और भी मुश्किल हो जाये क्यों, अपने थोड़ा बहुत क्षमा भी कर दें पराये तो क्षमा भी नहीं करते, परायों की दृष्टि तो बहुत कठोर होती है, उनका निर्णय तो और कठोर होता है अपना थोड़ी दया ममता करता है भूल भी करे तो निंदा नहीं करता, आंख हटा लेता है, लेकिन पराया ? पराया क्यों आंख हटायेगा। बुद्ध को छह वर्षों तक निरन्तर निमन्त्रण मिलते रहे और जब बुद्ध के पिता को खबर मिलती थी कि बुद्ध भी मांगते हैं सड़कों पर तो वे कहते थे कैसा पागल है हमारे पास सब है और वंश में कभी कोई भिखमंगा नहीं जन्मा। हम सदा सम्राट रहे क्या पागलपन सवार हुआ है पिता को, निश्चित ही लगता रहा होगा कि बुद्ध पागल हैं। इसी आँख से बचने को जंगल जाना पड़ा। काश, पिता स्वीकार कर लेते कि बुद्ध का होने का यह ढंग है और यह ढंग भी स्वीकृत है। इस जगत में अनन्त-अनन्त ढंग हैं होने के और प्रत्येक आत्मा को अधिकार है कि वह जो हो सके जो होना चाहे, जो उसके होने की आंतरिक क्षमता हो, जो उसकी नियति है—उसको पा ले।

प्रेम का अर्थ ही यही है कि दूसरे को हम हो जाने दें जो वह हो सकता है। उस के बीज को हम उसके वृक्ष के फल तक पहुंच जाने दें, हम बाधा न दें। हम गुलाब से न कहें कि तू चमेली हो जा और हम चमेली को कमल होने का उपदेश न दें। हम चमेली को चमेली होने दें, पानी दें, सींचें, फिक्र करें बाकी चमेली के होने में बाधा न डाल दें। प्रेम का अर्थ ही यह है इसलिए प्रेम बिल्कुल नहीं है जगत में। काश, राजमहल में प्रेम होता तो बुद्ध को छोड़ना न पड़ता क्योंकि पेम स्वीकार करता है कि तुम ऐसे हो, प्रेम बदलने की कोशिश नहीं करता। बदलने की कोशिश हिंसा और घृणा का हिस्सा है, बदलने की कोशिश एक तरह की सर्जरी है, सूक्ष्म हम तुम्हें कराते हैं, निखारते हैं, हम तुम्हारा उपयोग एक पत्थर की तरह करते हैं और प्रतिमा हम अपनी तुम्हारे भीतर बनायेंगे तो छेनी उठा के हम हथोड़े से तुम्हें काटेंगे जब तक तुम वैसे न हो जाओ जैसा हम चाहते हैं तब तक हम पायेंगे कि तुम गलत हो और हर आदमी एक दूसरे को निखार रहा है और यह निखारने में

कोई निखरता नहीं सिर्फ विकृति आती है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति वही हो सकता है जो वह होने की क्षमता लेकर पैदा हुआ है। दुनिया में कोई उपाय नहीं उसे अन्यथा बनाने का, और जब भी हम अन्यथा बनाने की कोशिश करेंगे तो यह दुष्परिणाम होगा कि वह जो हो सकता था हो न पायेगा, त्रिशंकु की भांति अटका रह जायेगा, उसकी विधि उसके जीवन की नियति बदल गई और वह जो नहीं हो सकता था वह तो वह हो नहीं सकता है इसलिए हम सब अधबने, कुरूप जीते हैं। अधबने और कुरूप ही मर जाते हैं और यह बीज कभी फूलों तक नहीं पहुंच पाते। इसलिए दुनिया में इतने थोड़े महावीर दिखाई पड़ते हैं। हरेक बच्चा क्षमता लिये पैदा होता है बुद्धत्व की लेकिन इतने लोग उसे बनाने में लगे हैं, कहते हैं कि, अगर बहुत रसोइये हों रसोई बिगड़ जाती है, यहां एक एक आदमी के पीछे इतने कलाकार लगे हैं इतने मूर्तिकार इसके मूर्ति के बनने का कोई उपाय ही नहीं, यह बन ही नहीं सकती। मां कुछ और बना रही है बेटे को, बाप कुछ और बना रहा है, दादा कुछ और बना रहा है, चाचा कुछ और, भाई कुछ और सोच रहे हैं, शिक्षक कुछ और उपाय कर रहा है, राजनेता कुछ और आकांक्षा रखता है। यह सब लोग उसे बना रहे हैं यह सभी उसको मिटाने वाले हैं, सब विध्वंशक हैं। दूसरे को बनाने की कोशिश विध्वंश में हम साथ दे सकते हैं, सहारा दे सकते हैं, पर दूसरा वही बने जो उसकी अंतर नियति तय करती है, तब बड़ा कठिन है, क्योंकि हम सहारा ही क्यों देंगे? सहारा तो हमारा शोषण है हम सहारा जब देते हैं सौदे की तरह, जब तुम हमारी मानने को राजी हो! बाप भी बेटे से कहता है अगर तू मेरी सुनने को तैयार नहीं तो यह दरवाजे तेरे लिए बंद हैं यह दरवाजे कोई प्रेम के कारण नहीं खुले, बाप जो हिंसा कर रहा है उसका सौदा है, मेरे जैसा, मैं जो चाहता हूं, मेरा अहंकार जो तय करता है वैसा तू हो सकता हो तो रोटी रोजी यह मकान तेरे लिये है। अगर तू मेरे जैसा नहीं हो सकता तो फिर मेरा तुझसे क्या संबंध? अगर तुझे अपने ही जैसा होना है तो तू अपने पैरों पर खड़ा हो जा। पति और पत्नी के बीच जो निरंतर चलती कलह है सारी पृथ्वी पर उसका कारण पति-पत्नी के भीतर नहीं है उसका कारण इस वृति में है। क्योंकि पत्नी नहीं मान सकती कि पति स्वतंत्र है, वह उसके रोएं रोएं रेशे रेशे को नियंत्रित करना चाहेगी। मैंने सुना है कि एक स्कूल की शिक्षिका ने एक पत्र उसकी कक्षा में

पढ़नेवाली एक छोटी लड़की के लिए एक छोटे लड़के के लिये उसकी मां को लिखा और लिखा कि इस लड़के को संभालने में मैं परेशान हुयी जा रही हूं, लेकिन कुछ समझ नहीं आ रहा यह स्कूल की सभी लड़कियों का पीछा कर रहा है और उनको सता रहा है। तो उसकी मां ने पत्र लिखा कि अगर तुम कोई उपाय खोज लो तो मुझे लिखना क्योंकि वही मैं उसके पिता के साथ उसी उलझन में पड़ी हूं, अगर तुम सफल हो जाओ कोई विधि खोजने में जिससे मेरा लड़का लड़कियों का पीछा न करे तो विधि मुझे बता देना क्योंकि वही विधि मुझे उसके पिता पर, बारह साल से मैं कोशिश कर रही हूं अभी तक सफल नहीं हो पाई। हर पत्नी कोशिश करती है इसी तरह और असफल होती है इसलिए नहीं कि आदमी बुरे हैं इसलिए कि दूसरे को बनाने में कभी कोई सफल हो ही नहीं सकता।

पति भी पूरे वक्त आंखें लगाये हुये है, वह आंखें प्रेम की नहीं हो सकती क्योंकि प्रेम स्वीकार करना है, भरोसा करना है, ट्रस्ट प्रेम का लक्षण है, दफ्तर में बैठा है लेकिन चिंता है उसे उसकी पत्नी किसी से हंस बोल नहीं रही हो क्योंकि पति यह बरदाश्त नहीं कर सकता कि उसकी पत्नी उसके बिना भी हंस सकती है, उसके बिना तो उसे बैठे हुए रोते रहना चाहिए। सब पति सोचते हैं कि पत्नियां कालिदास के पात्र हैं मेघों से संदेश भिजवा रही हैं और सूख रही हैं उन्हें कोई पुरुष दिखाई नहीं पड़ता। जैसे कोई प्रसन्नता और नहीं, जैसे प्रसन्नता का एक ही झरोखा है और वह मैं हूं। जैसे झरोखे से कोई शुद्ध हवा आयेगी तो मुझसे ही आयेगी जैसे और सब दिशायें रिक्त हैं, यह भरोसा नहीं है और न प्रेम है, दूसरे को अपने ढंग पर लाने की चेष्टा।

दूसरा जैसे एक साधन है एक वस्तु है जिसे सजाना है, संवारना है लेकिन दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है, उसकी कोई आत्मा नहीं है। यह जो दूसरे को बदलने की चेष्टा चलाती है चाहे कैसे ही संबंध हों, इस चेष्टा का नाम समाज है। यह चेष्टा इतनी भारी हो जाती है इसलिए बुद्ध को जंगल जाना पड़ा और जंगल में बैठेंगे कहां? कहीं बैठें वृक्ष के नीचे बैठेंगे इसलिए कहता हूं सांयोगिक है, वृक्ष की छाया है उसके नीचे बैठे हैं समाज से हटकर क्योंकि समाज की आग जलाती है समाज का जहर मिटाता है और समाज अब तक ऐसा हम नहीं बना पाये पृथ्वी पर कि उसके भीतर बुद्धत्व पैदा हो सके। उस समाज को ही मैं समाज कहूंगा

जहां बुद्धत्व होने के लिये जंगल न जाना पड़े तब तक हमें मानना चाहिये वह समाज का धोखा है हत्यारों और हिंसकों का एक समूह है जो हरेक की गर्दन को दबा रहा है लेकिन गर्दन को दबाने के ढंग ऐसे बारीक और सूक्ष्म हैं कि जिसकी गर्दन दबाई जा रही है वह भी प्रसन्न हो रहा है वह शायद सोच रहा है कि मेरे हित में यह सब किया जा रहा है ऐसा समझाया गया है। हजारों साल का प्रचार है कि हम जो भी कर रहे हैं तुम्हारे हित में कर रहे हैं। अगर हम तुम्हें मार भी डालें तो भी तुम्हारे हित के लिये ही मार रहे हैं और जो आपके साथ किया जा रहा है वही आप दूसरों के साथ कर रहे हैं। इस उपद्रव के बीच से हट जाना जरूरी है। इसलिए घटना वहां घटती है लेकिन ध्यान रहे बुद्धत्व के बाद बुद्ध वापिस समाज में लौट आते हैं। जिनत्व के बाद महावीर वापिस समाज में लौट आते हैं। इस दूसरी घटना पर बहुत कम विचार किया गया है कि क्यों वापिस लौट आते हैं? अब कोई भय नहीं। अब तुम कितनी ही गर्दन दबाओ, अब तुम बुद्ध को मिटा न सकोगे अब बुद्धत्व में वह पा लिया है जो मिटता ही नहीं। अब अमृत बुद्ध के जीवन का हिस्सा हो गया, अब यह धारा शाश्वत है अब तुम बुद्ध के पास जाओगे तो तुम मुश्किल में पड़ोगे।

अह ! तुम बुद्ध को मुश्किल में नहीं डाल सकते। अब तुम उनके पास जाओगे तो तुम अपनी जोखम खुद उठा रहे हो और बुद्ध तुम्हें बदलने के के लिये चेष्टारत नहीं है पर बुद्ध के होने का ढंग ऐसा है कि तुम बदलोगे। गुरू वह नहीं है जो तुम्हें बदलने के लिये पीछे पड़ा हो, गुरू वह है जिसके पास जाके बदलाहट शुरू हो जाये। गुरू 'केटालीटिक' एजेन्ट से ज्यादा नहीं हो सकता और अगर ज्यादा है तो दुष्ट है। अगर वह तुम्हें बदलने की कोई सीधी चेष्टा कर रहा है तो वह भी तुम्हारी गर्दन में सवार हो जायेगा। अगर वह तुम्हारी प्रशंसा करता है और तुम्हारी निंदा करता है, वह तुम्हें फुसलाता है, राजी करता है, अगर तुम उसकी नहीं मानते तो नाराज होता है अगर मान लेते हो तो मुस्कराता है। तब वह भी स्वर्ग-नर्क, लोभ भय की तरकीब का उपयोग कर रहा है, तब वह भी तुम्हें नष्ट करेगा इसलिये अधिक गुरू अनुयायिओं के दुश्मन हैं और अधिक गुरुओं के पास शिष्य नये जीवन को उपलब्ध नहीं होते। केवल रूठ जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं। सिर्फ वही गुरु तुम्हें मुक्त कर सकता है जो तुम्हें मुक्त करने के लिये भी सीधी चेष्टा

नहीं कर रहा है जो प्रत्यक्ष रूप में तुम्हें बदलने में उत्सुक नहीं है लेकिन जिसकी मौजूदगी अप्रत्यक्ष तुम्हें बदलती है। जिसके पास जाके बदलाहट घटनी शुरु होती है। जैसे सूरज निकलता है और एक कली नीचे खिलना शुरु हो जाती हैं। कोई सूरज की किरणें कली को पकड़ के खोल नहीं रही हैं और कली न खिले तो सूरज कोई उदास नहीं होगा और कली न खिले तो सूरज को कोई चिंता भी नहीं है लेकिन सूरज की किरणों की मौजूदगी से कली खिलनी शुरु हो जाती है क्योंकि खिलना इतना आनंदपूर्ण है सूरज में और सूरज की किरणों को पीना इतना अहोभाग्य है और सूरज में नाचना जन्मों जन्मों का सपना है उस कली का। कली अपने से खुल रही है, सूरज उसे खोल नहीं रहा। पक्षी अपने से आंख खोल लिये हैं सूरज उनके दरवाजों पर खटके नहीं मार रहा कि उठो सुबह हो गई, भोर हो गई, अब सोना उचित नहीं। ब्रम्हमुहूर्त में उठना उचित है ऐसा कुछ सूरज कह नहीं रहा, सूरज की किरणें आनी शुरू होती हैं और पक्षियों के कंठ सजग हो गये हैं। उन्होंने गीत गाना शुरु कर दिया उनकी आंख खुल गई एक उत्सव का क्षण उपस्थित हुआ है, पक्षी उसमें सम्मिलित हो गये हैं। पक्षियों का यह सम्मिलित होना उनकी अपनी चेष्टा है, सूरज की मौजूदगी का जो भी कार्य है वह अप्रत्यक्ष है वह परोक्ष है। उसकी मौजूदगी से कुछ हो रहा है लेकिन मौजूदगी से हो रहा है सूरज खुद कुछ नहीं कर रहा है। पूरी पृथ्वी भी सोई रहे और एक कली न खिले, एक पक्षी गीत न गाये तो भी सूरज की खुशी में इससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। ऐसा नहीं कि दोपहर को अचानक वह उदास हो जायेगा और सब किरणें सिकोड़ लेगा और उसकी आंखों से आंसू टपकने लगेंगे या दूसरे दिन वह विचार करेगा कि अब निकलूं या न निकलूं। अब अपने रथ को चलाऊं इस यात्रा पर या बंद करूं। और जब लोगों ने मुझे अस्वीकार कर दिया तो मैं क्यों फिकर करूं? सद्गुरु सूरज की भांति है, शिष्य उसके पास खिलते हैं लेकिन उसकी कोई चेष्टा नहीं है। संत हो शिष्य की पापी हो सद्गुरु की आंखों में समान है। संत के लिये कोई प्रसंशा नहीं है और पापी के लिये कोई निंदा नहीं है ऐसे व्यक्ति के पास 'केटेलीटिक की संभावना है, ऐसे व्यक्ति के पास कुछ हो सकता है। बुद्ध लौट आते हैं, एक सूरज की भांति, उनकी मौजूदगी में घटनायें घटनी शुरू हो जाती हैं उनके पास पहुंच के। इस गुरू के पास होने को

हमने सत्संग कहा है, सत्संग का अर्थ है गुरू के पास होना, हमारे अनूठे साहित्य का नाम उपनिषद् है। उपनिषद् का अर्थ है गुरू के पास बैठना कुछ और करना नहीं। सिर्फ गुरु के पास होना ताकि उसके अज्ञात से निकलती किरणें तुम्हारी कली को खोलना शुरू कर दें, कहना पड़ता है खोलना, लेकिन यह शब्द उचित नहीं है क्योंकि खोलने से लगता है कि कोई क्रिया की जा रही है, ना उसकी मौजूदगी में तुम्हारी कलियां अचानक खुलना शुरु हो जायेंगी। गुरु कुछ भी नहीं करता पर बहुत कुछ उसके पास घटता है। जो गुरु करता है उसके पास कुछ भी नहीं घटता। समाज में लौट आते हैं बुद्ध पुरुष और समाज है ही नहीं, कल तक जब वे गये थे बुद्धत्व के पहले समाज था, समाज था क्योंकि समाज उन्हें मिटा रहा था अब उन्हें कोई भी वह मिटा नहीं सकता अब वे वापिस लौट आ सकते हैं। अब समाज का जहर उनके लिये जहर नहीं है, अब विध्वंश असम्भव है। अब जो उन्हें मिटाने आयेगा वह भी उनसे कुछ ले के जायेगा वह भी उनके प्रेम का भागीदार होगा वह भी कोई भेंट स्वीकार करेगा जो जन्मों-जन्मों तक उसको प्रभावित करेगी। ज्ञान पाया गया वन में और ज्ञान लुटाया गया वापिस समाज में। कोई भी बुद्ध पुरुष जंगल में रह नहीं गया, रह जाये तो बुद्धत्व अभी घटा नही, क्योंकि जब आनन्द मिलता है तो बांटने का भाव भी उसके साथ ही मिलता है। इसे थोड़ा समझ लें। जो हमारे पास है उसे हम देना चाहते हैं, तो दुख है तो दुःख देना चाहते हैं, आनन्द है तो आनन्द देना चाहते हैं। जो भी हमारे पास है वह बांटने से बढ़ता है जब आप आनन्द देते हैं तो आनन्द बढ़ता है, जो भी आप बांटते हैं वही बढ़ने लगता है। बांटना बढ़ाने का मार्ग है, इसलिए अगर आप समझदार हों तो दूसरे को दुःख न देंगे क्योंकि वह आपके दुःख को बढ़ायेगा और दूसरे के रास्ते पर कांटे न रखेंगे क्योंकि यह अपने ही रास्ते पर रखे गये कांटे हैं। देर-प्रबेर इन कांटों से मिलना होगा। अगर आप होशियार हैं तो दुःख कभी भी नहीं बांटेंगे क्योंकि दुःख बांटने से बढ़ेगा और न बांटने से मरेगा, अगर आप समझदार हैं तो आनन्द सदा बांटेंगे क्योंकि आनन्द बांटने से ही बढ़ेगा और न बांटेंगे तो मरेगा। बांटना विस्तार का सूत्र है। कंजूस सिर्फ मरता है, कृपण का कोई जीवन ही नहीं। कृपण-मरा हुआ आदमी लाश है, कृपण के जीवन में कभी कोई उत्सव नहीं आता, आ ही नहीं सकता। क्योंकि उत्सव बांटने

से ही आता है, देने से ही आता है इसलिए उत्सव के दिन पर हम एक दूसरे को भेंट देते हैं कुछ बांटते हैं, कुछ न हो तो दूसरे को कम से कम बधाई देते हैं। अपने हृदय का उल्हास बांटते हैं, सभी उत्सव के दिन बांटने के दिन हैं। कृपण कभी भी बांट नहीं सकता, उसके जीवन में कभी भी उल्लास नहीं आता। इस जगत में कृपण से मरा हुआ आदमी खोजना कठिन है, मरे से मरा आदमी भी कृपण के बराबर मुर्दा नहीं होता। मैंने सुना है कि एक गांव में एक आदमी मरा। वह स्काट था, डाक्टर को बुलाया गया। क्योंकि मौन संदिग्ध था। डाक्टर जांच करने आया, उसने बजाय जांच करने के सिर्फ स्काट के खीसे में हाथ डाला, हाथ वापस निकाल लिया और कहा कि यह आदमी बिल्कुल मर गया तो लोगों ने कहा यह जांच बड़ी नहीं है, हमने और भी जांचें देखी हैं, यह कौन-सा ढंग है ? उसने कहा स्काट के खीसे में हाथ डालो तो वह पड़ा नहीं रह सकता, चाहे खीसा खाला ही क्यों न हो। योरप में स्काट सबसे ज्यादा कृपण लोग हैं। इसलिए अगर एक भी सांस बची है तो यह आदमी उठ कर खड़ा हो जाता कि किसने मेरे खीसे में हाथ डाला। पर बिलकुल मर गया और किसी जांच की जरूरत नहीं। कृपण का अर्थ है संकोच सिकुड़ता हुआ व्यक्तित्व और जो सिकुड़ रहा है वह ब्रह्म को कैसे पायेगा क्योंकि ब्रह्म का अर्थ है विस्तार, जो फैल रहा है वही ब्रह्म को पायेगा तो जब आनन्द उपलब्ध होता है तो आनन्द बंटता है, जब ज्ञान उपलब्ध होता है तो ज्ञान बंटता है। आप भी बांटते हो अगर ज्ञान उपलब्ध नहीं हुआ तो अज्ञान बांटते हो। इस जगत में जितनी सलाहें दी जाती हैं उतनी और कोई चीज नहीं दी जाती। और इतने अज्ञानी हैं और हरेक सलाह देते हैं, अज्ञान यहां अनन्त गुना हो जाता है सलाहों के कारण क्योंकि अज्ञानी यह फिक्र ही नहीं करता कि जो सलाह मैं दे रहा हूं, उस सम्बन्ध में मैं कुछ जानता हूं। यह सवाल ही नहीं कि आप जानते हैं, सलाह देने से जानने का मजा आ जाता है। ज्ञानी एक दफे झिझक जाये सलाह देने में, अज्ञानी नहीं झिझकता। उससे आप कुछ भी पूछें वह तैयार है सलाह देने को। अज्ञान बांटता हैं, ईर्ष्या, महत्वाकांक्षा बांटते हैं, सब तरह के रोगों के कीटाणु हम बाहर भेज रहे हैं, खुले हाथों बांट रहे हैं और उससे हम जगत को एक महारोग, एक महा विक्षिप्त स्थान में बदल देते हैं। ज्ञानी भी बांटता है, आनन्दित पुरुष भी बांटता है, परमात्मा को उप-

लब्ध चेतना भी बांटती है। बांटने से समाज में ही घट सकता है, ज्ञान भला बोधि वृक्ष के नीचे घट जाए लेकिन ज्ञान के बांटने की घटना तो आपके पास ही घट सकती है।

सभी जागृत पुरुष समाज में वापिस लौट आते हैं लेकिन वे लौटते हैं तब जब इस समाज का जाल उन्हें जरा भी प्रभावित नहीं कर सकता, जब यह समाज की कोई रेखा उनके ऊपर नहीं आ सकती, जब यह समाज कितनी ही रेखायें खींचे वे पानी पर खिची हुई रेखायें सिद्ध होने लगती हैं—खिच भी नहीं पतीं कि बिखर जाती हैं, न तुम्हारी प्रशंसा फिर प्रभावित करती है, न तुम्हारी निंदा। तुम क्या कहते हो यह अर्थ-हीन हो जाता है। कोई 'इम्फोथेरिक' कोई गुप्त सम्बन्ध नहीं है और ऐसा मत सोचना कि ज्ञान घटेगा तभी जब तुम किसी वृक्ष के नीचे रहोगे। कहीं भी घट सकता है, आकाश उतना ही निर्दोष है जितना कोई वृक्ष, इस मकान के छप्पर के नीचे भी घट सकता है क्योंकि छप्पर पर छाये हुए कवेलू भी मनुष्य से ज्यादा निर्दोष हैं। कहीं भी घट सकता है, एक चट्टान की आड़ में घट सकता है, खुले आकाश के नीचे घट सकता है, ज्ञान के घटने का कोई कार्य कारण सम्बन्ध किसी वृक्ष से नहीं है लेकिन वृक्ष के नीचे बहुत बार घटा है क्योंकि समाज अब तक इस योग्य नहीं कि समाज को बोधि-वृक्ष बनाया जा सके। समाज अभी भी असमर्थ है, कमजोर है, रुग्ण है इसलिए कोई गुप्त या कोई छिपी हुई बात खोजने की जरूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता :

भगवान, आपके एक संन्यासी हैं और मेरे मित्र; वर्षों से आपका सान्निध्य उन्हें उपलब्ध रहा। एक दिन बातचीत के सिलसिले में उन्होंने मुझसे कहा कि मैंने तो अभी तक भगवान का दिया हुआ पहला पाठ भी ग्रहण नहीं किया। अपने मन में मैंने कहा, अरे! यह आदमी तो मेरी ही बात कह रहे हैं। क्या यह हमारी मूढ़ता की निशानी है? या यह विधा ही अति कठिन है या हम सचमुच यह बात सीखना नहीं चाहते?

भगवान श्री :

सभी बातें एक साथ हैं। विधा अति कठिन है क्योंकि इस विधा का सारा सम्बन्ध अज्ञात 'अननोन' से है और जिसे तुमने कभी जाना नहीं, किसी तरह का जिससे कोई संपर्क

नहीं हुआ, जिससे कोई पहचान नहीं बनी उसके सम्बन्ध में तुम सीखने आओ। जो भी कहा जाये वह सब शून्य में खो जाता है, भीतर उसका कोई छोटा-सा भी अनुभव हो तो उस अनुभव के आसपास अज्ञान के लिए कही गई बातें इकट्ठी हो जायेंगी लेकिन वैसा कोई अनुभव भीतर नहीं है इसलिए तुम्हारे सिर पर से सारी बातें बह जाती हैं, यह विद्या ही अज्ञान की है और तुम जो भी जानते हो उससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता। संबंध जुड़ जाये तो तुम्हारे भीतर यह अटक जाये, कहीं जगह बना ले—यह बिना तुम्हें छुए बह जाती है, तुम इसे पकड़ ही नहीं पाते, पकड़ोगे भी कैसे? क्योंकि जिससे तुम पकड़ने की कोशिश करते हो उससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसे हैं जैसे कोई हवाओं को मुट्ठी में पकड़ने की कोशिश करे मुट्ठी बंध जाती है, हवा बाहर रह जाती है और मजा तो यह है—खुली मुट्ठी में हवा होती है, बंधी मुट्ठी में खो जाती है और जिसने मुट्ठी बांध के पाया कि हवा खो जाती है उसका तर्क क्या कहेगा? उसका तर्क कहेगा ठीक से नहीं बांध पाये, उसका तर्क कहेगा बांधने में जरा देर हो गई—जरा और झपट्टे से बांधो ताकि हवा बाहर न निकल पाये और तुम मुट्ठी में बांध लो. उसका तर्क कहेगा तुम्हारी मुट्ठी में कहीं कोई छिद्र है जिनसे हवा बाहर निकल जाती है। यह सीधी-सी बात है और हम जानते हैं कि यह गलत है और तर्क यह कहेगा—तर्क यह तो कभी कहेगा ही नहीं कि तुम मुट्ठी बांधते हो इसी से हवा निकल जाती है। तुम बांधो ही मत हवा सदा वहां है, लेकिन हमारी बुद्धि कहेगी कि बिना बांधे कोई चीज कैसे हो सकती है। धन हम तिजोड़ी में बांधते हैं तो रुकता है, धन हम मुट्ठी में बांधते हैं तो रुकता है, धन को अगर ऐसा खुली मुट्ठी में छोड़ दें तो क्षण भर नहीं रुकेगा, मुट्ठी बांध बांध के भी नहीं रुकता तो खुली मुट्ठी में कैसे रुकेगा? तिजोड़ी की चाबी एक दिन भूल जाये तो तिजोड़ी गई। जीवन का अनुभव कहता है बांधो, पकड़ो जोर से, तो ही कोई चीज पकड़ी जाती है पर हमें हवा को बांधने का कुछ पता ही नहीं कि हवा को बांधने का ढंग विपरीत है—वहां खोलो, मुक्त करो तो हवा तुम्हारी है। वहां बांधा कि तुम चूके, वहां बांधा कि तुमने खोया। हवा पर कोई तिजोड़ियां नहीं हो सकतीं, न चाभियां हो सकती हैं। हवा का अर्थ ही उन्मुक्तता का नाम है। हवा सदा बह रही है

उसे अगर तुम बांध भी लोगे, कोई उपाय कर लोगे तो वह गन्दी हो जायेगी । और बंधी हवा से जो प्राणदायी तत्व है वह विलीन हो जायेगा, बधी हवा से आक्सीजन तो खो जायेगी सिर्फ नाईट्रोजन और दूसरे मृत्यु के तत्व रह जायेंगे । एक तो हवा को बांधना मुश्किल और अगर तुमने बांध लिया तो हवा में जो बांधने योग्य था वह खो जायेगा और जो न बांधने योग्य था वह बच रहेगा । ऐसी ही अवस्था है ज्ञान, जो हमारा है, वह पदार्थ से संबंधित है, संसार से सम्बंधित है । शरीर से सम्बंधित है । शरीर से सम्बंधित है और अज्ञात का हमें कुछ पता नहीं । उन्हीं उपायों को हम अज्ञात पर ले जाते हैं जिन्हें हमने ज्ञान पर लगा कर सफलता पायी है । इसलिए इस जगत की सफलता उस जगत में विफलता सिद्ध होती है । अब तक जो भी तुमने सीखा है वह स्मृति से सीखा है । उस जगत की कोई भी घटना स्मृति से नहीं सीखी जा सकती । केवल अनुभव से जानी जा सकती है । अब तक जो भी तुमने जाना है, उसकी सीमा है । उसकी परिभाषा हो जाती है और अब मैं जो तुमसे कह रहा हूं, उसकी कोई सीमा नहीं—वह विराट है । उसकी कोई परिभाषा नहीं है, लोग पूछते हैं परमात्मा की क्या परिभाषा ? वह प्रश्न ही मूढतापूर्ण पूछ रहे हैं, परिभाषा तभी हो सकती है जब किसी चीज की सीमा हो और परिभाषा सदा हमें दूसरे से करनी पड़ती है । अगर कोई तुमसे पूछे कि जीवन क्या है तो तुम्हें तत्क्षण मृत्यु को परिभाषा में लाना पड़ेगा, तुम्हें कहना पड़ेगा—जो मृत्यु नहीं । कोई तुमसे पूछे प्रकाश क्या है ? तुम्हें तत्क्षण अंधेरे को परिभाषा में लाना पड़ेगा और कहना पड़ेगा—जो अंधेरा नहीं । बड़े से बड़े शब्दकोश में भी अगर तुम खोजोगे तो बड़े हैरान होगे—कैसा बच्चों का खेल है । अगर शब्दकोश में पूछो कि पदार्थ क्या है ? तो वे कहते हैं—जो मन नहीं । और तब तुम उल्टो पन्ने और पहुंचो मन पर, और पूछो कि क्या है ? तो वे कहते हैं—जो पदार्थ नहीं । यह कोई परिभषायें हैं—जिसमें विपरीत को भीतर लाना पड़े । यह सिर्फ खेल है । कठिनाई हो जाती है । इस खेल को परमात्मा पर जारी नहीं रखा जा सकता, क्योंकि परमात्मा का कोई विपरीत नहीं जो तुम कह सको, जिससे तुम परिभाषा बना सको । तुम्हारे घर के चारों तरफ बाउन्ड्री है, सीमा है । लेकिन क्या कभी तुमने ख्याल किया कि वह सीमा दूसरे के घर से बनती है ।

अगर तुम ही अकेले पृथ्वी पर हो तो कैसे सीमा बनाओगे ? सीमा के लिए दूसरा चाहिये—विपरीत चाहिए, दुश्मन चाहिये ।

परमात्मा से अन्य कोई भी नहीं, कोई दूसरा नहीं 'द अदर' ऐसा कोई नहीं, कोई शत्रु नहीं । इसलिये परमात्मा को द्वंद्व की परिभाषा में नहीं लाया जा सकता । मेरे पास लोग जो आते हैं वे कहते हैं परमात्मा की क्या परिभाषा ? उनसे मैं कहता हूं परमात्मा की कोई परिभाषा नहीं । तो वे कहते हैं फिर आगे बात ही नहीं हो सकती । वह ठीक कहते हैं, क्योंकि जब किसी भाषा की परिभाषा ही न होती हो तो आगे की बात क्या करनी । इसलिए पश्चिम के बहुत से आधुनिक विचारक कहते हैं कि परमात्मा इत्यादि अर्थहीन शब्द हैं, क्योंकि इनकी परिभाषा नहीं तो अर्थ कैसा 'मीनिंगलैस' । पश्चिम में एक बहुत बड़ा आंदोलन पिछले पचास वर्षों में चला है—भाषाशास्त्रियों का और दर्शनशास्त्रियों का । उन्होंने एक नया मत, एक नया सम्प्रदाय खड़ा किया है । उनके संप्रदाय का आधार 'अनालिसिस आफ लैंग्वेज' भाषा का विश्लेषण । और वे कहते हैं कि जब तक किसी शब्द की परिभाषा न हो तब तक हम उस पर चर्चा ही नहीं करना चाहते क्योंकि चर्चा होगी कैसे ? जब तक शब्द का अर्थ ही निर्णीत नहीं तो चर्चा व्यर्थ है । हम कुछ कहेंगे तुम कुछ समझोगे । तीसरा कुछ अर्थ लेगा, चौथा कुछ अर्थ करेगा । इस संप्रदाय के, भाषा संप्रदाय के लोग कहते हैं कि दर्शनशास्त्र इसी तरह की व्यर्थ चर्चाओं में हजारों साल से लगा हुआ है । पहले शब्द की स्पष्ट परिभाषा होनी चाहिये फिर आगे बढ़ा जा सकता है । तो फिर परमात्मा में आगे बढ़ने का उपाय बंद आत्मा में आगे बढ़ने का उपाय बंद, सब द्वार बंद । यह कठिनाई है, क्योंकि इस जगत के संबंध में जो भी तुमने जाना वह काम नहीं देगा । और जिन विधियों का तुमने उपयोग किया वे विधियां भी काम नहीं देंगी । इसलिए कठिन है । इस विद्या की कठिनाई के कारण इस विद्या को हजारों साल तक गुप्त रखना पड़ा, गुप्त रखने का और कोई कारण नहीं । क्योंकि जब तुम समझ ही न सकोगे तो इसकी चर्चा करने से फायदा क्या ? पहले तुम्हें तैयार करना पड़ेगा ताकि तुम समझ सको । जब तुम योग्य हो जाओगे, पात्र हो जाओगे, जब तुम उस जगह खड़े हो जाओगे जहां से इन अनिवर्चनीय शब्दों का ईशारा तुम तक पहुंचने लगे, तब तुम समझ पाओगे । विद्या कठिन है । और दूसरी बात भी सच

है कि मनुष्य मूढ़ है। इसलिए जटिलता और भी बढ़ जाती है। विद्या कठिन है और मनुष्य मूढ़ है। मूढ़ता का क्या अर्थ है? मूढ़ता का अर्थ गैरजानकारी नहीं? क्योंकि पंडित भी मूढ़ होते हैं, और कभी-कभी अपठित अपंडित भी मूढ़ नहीं होता। मूढ़ता चित्तकी आच्छादित दशा का नाम है। अहंकार से आच्छादित चित्त का नाम मूढ़ है। मूढ़ का अर्थ कम या ज्यादा जानने से नहीं। अगर कम जानने का नाम मूढ़ हो तो कबीर मूढ़ हैं। अगर कम जानने का नाम मूढ़ता हो तो बुद्ध को भी मेट्रिक पास करवाना मुश्किल। एकदम सीधा अभी अगर उनको ले आया जाये उनके महानिर्वाण से उतार के और बिठा दिया जाये मेट्रिक में फैल होना निश्चित है। इसका अर्थ हुआ तुम्हारे बच्चे भी जो मेट्रीक पास हो रहे हैं, वह बुद्ध से बुद्धिमान हैं। जीसस कहां टिकेंगे? मोहम्मद को कहां खड़ा करोगे? मोहम्मद लिखना भी नहीं जानते और जब पहली दफे कुरान की आयत उतरी तो मोहम्मद ने जो पहला शब्द कहा वह यह कि यह क्या कर रहे हो? मैं तो लिखना ही नहीं जानता तो जो कहा जा रहा है, उसे लिखूंगा कैसे? दैवी वचन सुनाई पड़ा मोहम्मद को कि तू फिक्र मत कर, जब अनुभव हो जायेगा तो लिखना भी आ जायेगा। जो बोलना नहीं जानते वे भी बोलने लगेंगे, जब अनुभव आ जायेगा। क्योंकि अनुभव बहेगा। तू घबड़ा मत, लेकिन मोहम्मद इतने घबड़ा गये कि यह क्या काम मुझसे लिया जा रहा है। मैं लिखना ही नहीं जानता, मैं अपने दस्तखत नहीं कर पाता हूं, वचन सुना गया कि तेरे दस्तखत को तो जरूरत ही नहीं। जो आदमी अभी दस्तखत ही करने में उत्सुक है उस पर तो यह कुरान उतरेगी भी नहीं। तेरे हस्ताक्षर तो चाहिये भी नहीं, तू तो बिल्कुल मिट जा और तू घबड़ा मत। मोहम्मद घर लौटे और अपनी पत्नी से बोले कि कम्बल ले आ मुझे बुखार चढ़ा है। कम्बल पर कम्बल डाल कर वे अन्दर हो गये और शरीर उनका कंप रहा है। पत्नी ने कहा यह सब अचानक कैसा हुआ? घड़ी भर पहले तुम गये, तब सब ठीक था, यह अचानक बुखार! मोहम्मद ने कहा यह बुखार कुछ और ही तरह का है। मेरा पूरा प्राण कंप रहा है, क्योंकि मुझसे कुछ ऐसा काम लिया जा रहा है जो मैं पाता हूं कि करने में मैं बिल्कुल असमर्थ हूं। मैं नहीं कर पाऊंगा, लेकिन मेरे हाथ के बाहर है—इसे मैं रोक भी नहीं सकता। कोई मुझमें प्रवाहित हो रहा है, यह उष्णता

मेरी नहीं है, यह बुखार—बुखार नहीं है। यह कुछ और है जिसे मैं पहचान भी नहीं सकता क्योंकि यह पहली दफा आया है। यह पहले कभी आया नहीं इसका 'रेकग्नीशन' कैसे हो ? यह कुछ दैवी बुखार है "डीवाइन फीवर", तू मुझे सिर्फ विश्राम करने दे। तीन दिन तक मोहम्मद बुखार में पड़े रहे। तीन दिन के बाद जब वे उठे तो उनका चेहरा बदल गया था जैसे कि सोना आग से गुजर गया हो। एक साधारण बेपढ़ा-लिखा आदमी अचानक ज्ञानी हो गया था। क्या घटना घटी ? अन्यथा मोहम्मद बिना पढ़े हैं इसलिए कुरान में वह साहित्यिक खूबी नहीं है जो उपनिषदों में है, इसलिये हिन्दू कुरान को पढ़ता है तो उसे लगता है इसमें क्या ? उसे पता नहीं कि एक गैर पढ़े लिखे आदमी के द्वारा लिखा गया, उपकरण लिखने पढ़नेवाला नहीं था, उसके पास बहुत अच्छे शब्द नहीं थे लेकिन इस कारण कुरान में एक और खूबी है जो उपनिषद् में नहीं है। वह खूबी है जैसे कि गांव का बिना पढ़ा-लिखा बोलता है, उसकी भाषा में साहित्य नहीं होता लेकिन चोट होती है, क्योंकि उसकी भाषा जीवन से आती है, किताब से नहीं आती, मुर्दा नहीं होती, नाजुक नहीं होती लेकिन जीवंत होती है। इसलिए कुरान जितना जीवंत है, दुनिया का कोई शास्त्र उतना जीवंत नहीं है। चोट उसकी गहरी है और जिंदगी के सीधे अनुभव से आई है, नाजुकता नहीं है, काव्य नहीं है, बड़ी उपमायें नहीं हैं, बड़ी कवितायें नहीं हैं, सीधे देहाती के वचन हैं पर बड़े सार के हैं। इसलिए कुरान पर किसी टीका की जरूरत नहीं पड़ी। टीका का कोई सवाल नहीं है, कम से कम समझ का व्यक्ति भी समझ सकता है। गीता पर हजारों टीका की जरूरत पड़ी, फिर भी समझ में नहीं आती। वह भाषा एक परिष्कृत आदमी की है। कुरान सीधा समझ में आता है, इसलिए गीता पर टीकाएं बहुत और बहुत लोगों ने गीता पढ़ी लेकिन इस्लाम जिस आग की तरह फैला हिन्दू धर्म कभी नहीं फैल सका। वह पंडित का धर्म है। इसलिए लोकमानस को कभी उस तरह नहीं छू सका जैसा इस्लाम ने छुआ और जिस तरह मुसलमान इस्लाम के लिए मरने के लिए तैयार हैं कोई हिन्दू धर्म के लिए मरने को कभी तैयार नहीं होता क्योंकि वह जो चीज आपका जीवन ही नहीं बनी सिर्फ बुद्धि रही उसके लिए कौन मरने को तैयार है ? इसलिए इस्लाम की बड़ी गहरी पकड़ है, जैसे भीतर सीधे

हृदय को पकड़ लेता है, और मोहम्मद पर उतरा जिसको हम कहेंगे बे पढ़े-लिखे, अपठित, असंस्कृत। जीसस का कोई ज्ञान नहीं है, एक बढ़ई का लड़का है, एक शूद्र परिवार से आता है। इसलिए बाइबिल में भी कोई काव्य-गौरव नहीं है। पर जैसे सीधे वचन तीर की तरह चुभनेवाले बाइबिल में हैं, वैसे कहां पाइयेगा ?

जब मैं कहता हूं मूढ़ तो मेरा मतलब यह नहीं कि आप कम जानते हों तो मूढ़। मेरा मतलब इतना है, आप सब कुछ जानते हों, स्वयं को नहीं जानते तो मूढ़ और कुछ भी न जानो और स्वयं को जानो तो ज्ञानी। तो यहां ज्ञान का एक ही अर्थ है स्वयं को जानना और स्वयं को आप तब तक न जान पाओगे जब तक अहंकार को जानते हो और कहते हो 'मैं' हूं 'मैं' ही बाधा हूं यही अहंकार मूढ़ता है, परम मूढ़ता है। निरहंकारिता ज्ञान है, निश्चित ही मनुष्य मूढ़ है और विद्या कठिन है और तीसरी बात भी सच है कि तुम कहते जरूर हो कि तुम जानना चाहते हो लेकिन तुम जानना नहीं चाहते। कहते जरूर हो कि तुम जानना चाहते हो फिर भी तुम जानना नहीं चाहते गहरे में। तुम जानने को तैयार नहीं, तुम जानने से बचना चाहते हो। क्या कारण होगा इस जटिलता का। क्योंकि अगर नहीं जानना चाहते तो बात खतम हो गई, जानना चाहते हो तो जानने में लगो, यह दोहरापन क्यों? यह दोहरापन बहुत नाजुक है और समझने जैसा है और जब तक इस दोहरेपन को न समझोगे तुम्हारे भीतर यह जो द्वंद है उसको न समझोगे, तब तक निर्द्वन्द नहीं हो सकते हो। हजारों लोगों को निकट से जानने का मेरा जो अनुभव है वह यह कि वे सभी कहते हैं कि वे जानना चाहते हैं ? उनमें से शायद ही कभी कोई जानना चाहता है। क्यों कहते हैं फिर ? किसको धोखा देते हैं ? धोखा देने का सार भी क्या है ? खुद का समय, जीवन व्यय करते हैं, अगर जानना है तो जानने में लगना चाहिये, नहीं जानना है तो बात छोड़ देना चाहिए। यह द्वंद क्यों ? इस द्वंद का कारण है। पहला कारण तुम जानना नहीं चाहते क्योंकि तुम जिस जीवन में रह रहे हो उस जीवन में अकेला दुःख ही नहीं है उस जीवन में सुख की झलकें भी हैं। उन सुख की झलकों को तुम छोड़ना नहीं चाहते हो—इससे द्वंद पैदा होता है। इसको ठीक से समझ लें, तुम्हारे जीवन में दोनों हैं, दुःख भी है, सुख भी है। सुख कम होगा झलक होगी, आभास होगा, आशा होगी लेकिन है। दुःख भी हैं, दुःख से तुम मुक्त

होना चाहते हो इसलिए तुम ज्ञानियों के पास पहुंचते हो क्योंकि वहां आश्वासन है कि दुःख से छुटकारा हो जायेगा। और जब तुम ज्ञानी के पास पहुंचते हो तो वह कहता है दुःख-सुख दोनों छोड़ो, तो ही ज्ञान होगा। बस वहीं अड़चन खड़ी हो जाती है क्योंकि सुख तुम्हारा है वह तुम छोड़ना नहीं चाहते। अभी-अभी विवाह करके तुम एक सुन्दर पत्नि को घर ले आए हो, अभी—अभी तो लोगों ने फूलमालायें पहनाई थीं इस अहोभाग्य के लिए कि तुम विवाहित हो, पत्नी हैं जिसे तुमने चाहा था, वह मिल गई है। सुखतो तुम बचाना चाहते हो। तुम किसी ऐसी तरकीब की खोज में हो जिससे संसार का सुख बच जाए और संसार का दुःख मिट जाये और यह असम्भव है, इसे कोई कभी नहीं कर सका और कभी भी नहीं कर सकेगा, क्योंकि संसार के सुख—दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं या तो पूरा सिक्का हाथ में रहेगा या पूरा सिक्का तुम्हें फेंक देना पड़ेगा। तुम असम्भव की कोशिश में लगे हो इसलिए भीतर विभाजित हो गये हो। तुम इसमें से आधा बचाना चाहते हो, इसमें से आधा छोड़ना चाहते हो और यह जीवन बांटा नहीं जा सकता यह पूरा है इसको बांटने का उपाय ही नहीं। तो जब तुम ज्ञानियों की बात सुनते हो कि दुःख से छुटकारा है कि दुख से मुक्ति का उपाय है, मार्ग है कि परम आनन्द हो सकता है। जब ज्ञानी कहते हैं परम आनंद तो तुम सोचते हो अपने सुख की बात तुम सोचते हो ठीक यही सुख हमारा परम आनन्द हो जाये।

ज्ञानी का आनंद और तुम्हारा सुख अलग-अलग चीजें हैं। ज्ञानी का शब्द आनंद तुम्हें धोखे में डालता है, तुम सोचते हो बस यही तो हम चाहते हैं महा सुख। चलो ज्ञानी की बात सुनो, ज्ञानी की बात सुन के तुम अड़चन में पड़ते हो, क्योंकि वह कहता है तुम्हारा दुःख छूटे तुम्हारा सुख भी छूटे, तुम दोनों छोड़ दो तो आनंद होगा और जब वह कहता है तो तुम्हें तर्क से बात समझ में भी आ जाती है। समझो, एक पत्नी से तुम्हें सुख मिलता है, इसी पत्नी से तुम्हें दुःख मिलेगा। जो तुम्हें सुख दे सकता है वही दुख दे सकता है। जो सुख नहीं दे सकता उससे दुख मिलने का कोई कारण नहीं, पड़ौसी की पत्नी से तुम्हें दुख नहीं मिल सकता और अगर मिलता हो तो जानना कि उससे कुछ न कुछ सुख मिल रहा है, चाहे उसे देखने से मिल रहा हो। जिससे तुम्हें सुख मिलता है उससे तुम्हें दुःख भी मिलेगा। जब तुम गुलाब का

फूल तोड़ने जाओगे तो कांटे भी चुभेंगे, वे अंग हैं। तुम्हारी पत्नी प्रसन्न है आज, उसकी मुस्कराहट फूल जाती है लेकिन कल तुम्हारी पत्नी दुःखी होगी अप्रसन्न होगी तब उसकी उदासी कांटा बन जायेगी। तुम चाहते हो तुम्हारी पत्नी प्रसन्न हो, लेकिन तुम्हारी पत्नी चौबीस घंटे प्रसन्न नहीं रह सकती, क्योंकि साधारण जीवन धारा विपरीत में परिवर्तित होती रहती है। सिवाय परमज्ञानी के चौबीस घंटे कोई प्रसन्न नहीं रह सकता। जैसे दिन है फिर रात है। ऐसे सुख है फिर दुःख। ऐसे प्रसन्नता है कि उदासी। अगर पत्नी तुम्हारी बहुत प्रसन्न है तो तैयार रहो जल्दी ही उदासीनता आयेगी और इस प्रसन्नता से तुम्हें सुख मिल रहा है तो फिर उदासी से दुःख मिलेगा। तुम भी चौबीस घंटे प्रसन्न नहीं रह सकते, तुम भी चौबीस घंटे शांत नहीं रह सकते, विपरीत आयेगा, जैसे दो किनारों के बीच नदी बहती है ऐसा तुम द्वंद्वों के बीच बहते हो। एक किनारे से नदी नहीं बह सकती और न एक किनारे के साथ तुम बह सकते हो। बुद्ध बिना किनारे के बहना शुरु करते हैं, वे सागर की तरह हैं, एक किनारा नहीं छूटता दोनों ही छूट जाते हैं। एक किनारे से जो छूटना चाहता है वह कभी भी न छोड़ पायेगा। इसलिये तुम्हारा लोभ तुम्हें ज्ञानियों के पास ले आता है। उनकी बातें भी तुम्हारी समझ में आ जाती हैं, बुद्धि से कि वे ठीक कह रहे हैं जब तक सुख है तब तक दुःख भी रहेगा। जब तक जीवन में सुख पा रहे हो मृत्यु में दुःख पाओगे। जब तक तुम्हें पद मिल रहा है, प्रतिष्ठा मिल रही है और तुम उसमें सुख पा रहे हो तो जब पद छिनेगा और पद छिनेगा नहीं तो दूसरों को कैसे मिलेगा अगर छिनता नहीं तो तुमको कैसे मिलता। किसी का छिना तब तुम्हें मिला तो मिलना और छिनना जारी रहेगा। जब पद पर रहने में तुम्हें प्रसन्नता हो रही है तो पद छिना कि तुम सिकुड़ोगे तुम्हें दुःख होगा। आज यश है, कल अपयश होगा। आज लोग गीत गाते हैं तुम्हारे, कल गालियां देंगे। लोग भी तुम्हारे गीत सदा नहीं गा सकते, गीत गा-गा के भी थक जाते हैं, गालियां भी जरूरी हो जाती हैं और ध्यान रहे जिसने तुम्हारा गीत बहुत गाया वहा तुम्हें गाली देगा। वही तुम्हारे बीच से बुरी तरह ऊब जायेगा और उसने जब गीत गाया तो तुम्हारा जो भला था उसको चुना था और जो-जो बुरा था उसको छिपा रखा था। कब तक छिपाये रखेगा आज नहीं कल उसे दिखाई पड़ने लगेगा।

जितना गीत गायेगा उतना ही दिखाई पड़ेगा, झूठ बोल रहा हूं। सबसे बड़ी अदभुत बात यह है कि किसी भी चीज को उसकी अतिशयोक्ति पर ले जाओ और उसका विपरीत तत्क्षण दिखाई पड़ने लगेगा। जैसे किसी आदमी को तुमने कहा बहुत सुन्दर है, अति सुन्दर है और ऐसा सुन्दर आदमी नहीं हुआ। तत्क्षण उस आदमी की कुरूपता दिखाई पड़ने लगेगी क्योंकि तुमने अति कर दी। सब आदमी बीच में हैं सुन्दर और कुरूप के, कोई आदमी न तो बिलकुल कुरूप है और न कोई आदमी बिलकुल सुन्दर है। इस जगत में अति तो होती नहीं सभी मध्य हैं। अगर तुमने अति की और कहा अहा, इससे सुन्दर व्यक्ति कभी नहीं हुआ तो उसी वक्त तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि उसमें यह कुरूपतायें हैं, जिसने गाया गीत गाली देने को तैयार हुआ। जिसने दी गाली आज नहीं कल गीत गायेगा, जो बना मित्र उसने शत्रुता की तैयारी की और जो तुम्हारा शत्रु है या तो पुराना मित्र है या भविष्य में मित्र होगा। तो जिस जिस चीज से तुम्हें सुख मिल रहा है आज नहीं कल तुम दुख पाओगे।

यह बात तर्क से समझ में आ जाती है बस तर्क से समझ में आती है, हृदय को समझ में नहीं आती। सिर्फ बुद्धि को समझ में आती है तो जब तुम संतों के पास होते हो उनकी बात बिलकुल समझ में आती है, वहां से तुम उठ कर जरा दूर भी नहीं पहुंच पाये कि सब बुद्धि का हिसाब बिखर जाता है। तुम्हारे भीतर की वृत्तियां, तुम्हारे जीवन की मूढ़ता, तुम्हारे जीवन का अज्ञान सब बगावत करता है और कहता है यह क्या सोच रहे हो। इसमें तो सब जीवन खो जायेगा अगर सुख भी छोड़ दिया तो फिर सार क्या है? कुछ ऐसा करो सुख को बचाओ, दुःख को काटो। सांसारिक आदमी यही कर रहा है सुख को बचा रहा है, दुख को काट रहा है। संन्यासी दोनों छोड़ रहा है। बस इतना ही फर्क है दोनों में। संसारी, सोच रहा है कोई न कोई तरकीब जरूर होगी कहीं न कहीं कोई उपाय जरूर होगा जिससे मैं सुख को बचाऊंगा और दुःख को काट दूंगा। और संन्यासी हम उसे कहते हैं जो इस समझ को उपलब्ध हो गया कि यह प्रयास असंभव है यह हो ही नहीं सकता क्योंकि यह जीवन और प्रकृति का नियम नहीं, यह विपरीत है।

यह ऐसा ही विपरीत है, मैंने सुना है एक आदमी एक डाक्टर के दफ्तर में भागा हुआ पहुंचा उसने अपने कान पर से रूमाल हटाया,

कान खून से भरा था, खून टपक रहा था, किसी ने उसका कान काट लिया था। चमड़ी लटकी हुई थी। डाक्टर चकित हुआ उसने कहा यह कैसे हुआ ? वह आदमी थोड़ा हिचका फिर उसने कहा कि मैंने ही अपना कान भूल से काट लिया। उस डाक्टर ने कहा यह असंभव है। अपना ही कान तुम कैसे काट सकते हो ? उस आदमी को भी ख्याल आया, उसने कहा कि मैं कुर्सी पर खड़ा था। उस आदमी ने सोचा कि शायद अब यही उपाय है बचने का, क्योंकि डाक्टर कह रहा है अपना कान कैसे काटोगे, तो उस आदमी ने कहा मैं कुर्सी पर खड़ा था जैसे की ऊंची चीज को पाने को कुर्सी पर खड़े होने से कोई आसरा मिल जाता हो ! काटा तो कान उसकी पत्नी ने था लेकिन चलते वक्त कहा था यह बात कहना मत, तुम यही कह देना कि तुमने ही काट लिया और पति जैसे आम तौर से डरे हुए होते हैं उसने कह दिया कि मैंने ही काट लिया, कह के फंसा, तब उसको भी समझ में आया कि कान तक पहुंचोगे कैसे, तो कुर्सी पर खड़ा था। मगर असंभव होता नहीं, चाहे कुर्सी पर खड़े हो जाओ चाहे पहाड़ पर खड़े हो जाओ, चाहे गरीब की झोपड़ी में रहो और चाहे महल में अपना कान नहीं काट पाओगे। सुख और दुख को काट के—एक को बचा के और दूसरे को हटा देने का कोई उपाय नहीं। यह प्रतीति जब तुम्हें सघन हो जायेगी, जब यह तुम्हारी बुद्धि में नहीं हृदय में उतर जायेगी, जब तुम्हारा रोआं रोआं इसे अनुभव करेगा उसी क्षण पहली बार तुम अपने को बदलना चाहोगे उसके पहले नहीं और जिस दिन तुम अपने को बदलना चाहोगे कोई मूढ़ता बाधा नहीं दे सकती। जिस दिन तुम अपने को बदलना चाहोगे अहंकार को छोड़ना आसान है, बहुत आसान है। ऐसा ही आसान है जैसे कोई आदमी अपने सिर पर बोझ ढो रहा हो और परेशान हो रहा हो और कह रहा हो—बहुत वजन है, बहुत वजन है। लेकिन सोचता है कि भीतर सोने की अशर्फियां भरी हैं इसलिये वजन को ढोना है और कोई उसे बता दे कि सिर्फ पत्थर हैं इसमें सोना नहीं है—वह उसी क्षण ढेर को गिरा देगा। जिस दिन यह मूढ़ता गिरती है उस दिन यह विधा कठिन नहीं है। क्योंकि स्वभाव में जाना कठिन कैसे हो सकता है ? जो तुम सदा से हो उसी को पाना कठिन कैसे हो सकता है ?

विश्व के मानव !
हृदय-पट खोल लो

□ *माधव जैन 'अन्तस'*
बैतूल (म० प्र०)

जागरण के स्वर अनूठे ।
भगवान श्री रजनीश के—
अन्तस-गहन से जब भी छूटे ।।

चेतना थी सुप्त तम के गर्त में ।
आना-जाना था जनम का पर्त में ।।
दी जगा प्रज्ञा स्वयंभू ने स्वयं—
देखें भीतर अन्तस जागरण ।।१।।

मनन-कर्त्ता मन यूं बोला बार बार ।
वासना निर्वासना के आर पार ।।
हाथ जोड़े "मैं" ठिठुककर रह गया—
प्रभु श्री हैं मूर्च्छाभंजक अनूठे ।।२।।

विश्व के मानव हृदय-पट खोल लो ।
जौहरी रजनीश देवे लाल लो ।।
आर्य-भूमि में जगा है सत्य लो—
जन्म ही बीते न अपना लेटे-लेटे ।।३।।

●

भक्ति के येरंग

★

भक्ति के ये रंग हृद्-पट पर बिखर जाने तो दो
आज कुछ सत्संग में जीवन निखर जाने तो दो

क्या पता फिर लौट कर आये न आये यह घड़ी
प्रभु-चरन में प्रेम के कुछ पुष्प धर जाने तो दो

क्या अनोखी है छटा रजनीश या जगदीश की
आज दर्शन से तनिक लोचन संवर जाने तो दो

हम न जाने किस जनम के पुण्य से हैं इस समय—
जब बही प्रभु-प्रेम-गंगा, डूब—तर जाने तो दो

नित्य लीलाएं नई हैं हो रही रजनीश की
आज इस रस-माधुरी का पान कर जाने तो दो

कृष्ण ये कलिकाल के हैं विश्व का मन मोहते
बाँसुरी में राग बन मुझको उतर जाने तो दो

□ स्वामी योग प्रीतम
भीलवाड़ा (राजस्थान)

भगवान श्री रजनीश दर्शन : मौलिश्री के झरोखे से

□ अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'
घंसोर, सिवनी (म. प्र.)

मैंने अपने अन्तर में इस बात को पाने का बहुत प्रयास किया है जिससे मैं यह कह सकूं कि मैं भगवान श्री से प्रभावित क्यों हुआ। पर किसी एक बात में पूरा अर्थ देकर कह पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। फिर भी जो वस्तु मुझे सर्वाधिक प्रभावित कर सकी है वह है उनकी मौलश्री सी मौलिकता। मौलिकता से मेरा पुराना प्रेम है।

उन्हें पढ़कर मैंने ये जाना कि तोता मौलिक नहीं होता या तोते का अनुकरणीय होना ही उसकी मौलिकता है। और ऐसी मौलिकता की नियति पिंजड़े में बन्द रहना ही है। मुक्ति नहीं। यह हमारी विडम्बना है कि हम ऐसे ही ज्ञानी शुकदेवों की पूजा किए जा रहे हैं। यह हम भूल जाते हैं कि ज्ञानी होने के लिए मौलिक होना आवश्यक है। आइये पहले हम अलौकिक और तथाकथित ज्ञानी के विषय में भगवान श्री से

जानें :

○जब हम किसी अच्छे वक्ता से प्रभु भक्ति पर कोई भाषण सुनते हैं तो उसकी भाषण की कला से प्रभावित होकर झट यह कह उठते हैं कि यह कितना ज्ञानवान व्यक्ति है जबकि वस्तुस्थिति यह है कि वक्ता अपने भाषण को जगह-जगह सुनाकर उसे रट चुका है, केवल अभ्यास और परिश्रम ने उसे अपने फन का माहिर बना दिया है, वह ज्ञानी नहीं है।○

हमें एक बार एक अध्यापक द्वारा "मेरे जीवन का चरम लक्ष्य" विषय पर निबन्ध लिखने को कहा गया था। बहुतों ने किसी प्रसिद्ध नेता, साहित्यकार, किसी महात्मा या अवतार जैसा बनने को ही जीवन का चरम लक्ष्य माना था। बबूलों ने गुलाब बनने की चेष्टा की थी तो आम ने इमली बनने की—जैसा कि हम अपनी अपरिपक्व अवस्था में साधारणत: कर बैठते हैं, जिसका कारण स्वार्थी उपदेशकों के प्रभाव से समाज में अनुकरण की प्रवृत्ति का जड़ जमा लेना है। इस प्रसंग में भगवान श्री का कथन कितना सटीक है :

○ अनुकरण एक प्रकार का अभिनय है। हम जितने भी महा-पुरुषों या अवतारों का स्मरण करते हैं, हममें उन जैसा बनने की प्रवृत्ति ही अधिक होती है; यह आत्म-स्वभाव पर कुछ लादने के समान है। इससे हम न तो वह रह पाते हैं, जो हम हैं, और न उनके जैसा ही बन पाते हैं। यदि सत्य को पाना है तो अनुकरण से बचना चाहिए।○

इससे स्पष्ट है कि अनुकरण के विपरीत मौलिकता एक विधायक स्थिति है जबकि अनुकरण स्वविरोधी आयाम है, जबकि सामान्यत: उसे ही सीधा-साधा मार्ग समझा जाता है।

भगवान श्री के व्यक्तित्व में मैंने मौलिकता और आध्यात्मिकता को समानार्थी पाया है जैसा कि अन्यत्र कहीं नहीं पाया। संसार को सीखने के लिए भले ही अनुकरण की आव-श्यकता हो परन्तु सत्य के साक्षात्कार में वह बाधक है क्योंकि भगवान श्री कहते हैं :

□ अनुकरण आत्मविकास के मार्ग में इसलिए भी बाधा है कि वह अपने ऊपर स्वयं अपनी इच्छा से किसी को हावी होने देता है इससे अपने को पहचानने की शक्ति का भी लोप होता है और सत्य की उपलब्धि नहीं होती।

सत्य यह है कि हमें अपने जैसा ही होना है किसी और जैसा नहीं।□

यह पढ़ कर मुझे चिरप्रतीक्षित प्रश्न का समुचित उत्तर मिल गया कि मेरे जीवन का चरम लक्ष्य मेरी मौलिकता का विकास है अनुकरण नहीं। 'स्व' को पहचानना है 'पर' को नहीं और तब से मेरी जीवन-सरिता एक बिलकुल ही नया मोड़ लेकर बह चली हैं।

भगवान श्री के साहित्य का अध्ययन करने पर आगे पता चला कि जब हम अपने चेतन तो क्या अचेतन तक में मौलिक नहीं हैं। सदा बाह्य से प्राप्त शब्दों और विचारों के विभिन्न जोड़ तोड़ से ओत प्रोत हैं, और स्वयं के मौलिक होने की कल्पना कर बैठते हैं और इस प्रकार एक भूल दुहराते हैं। "ईश्वर-साक्षात्कार" विषय पर उन्होंने कहा है—

□शास्त्र और तत्वज्ञान पर आधारित साधना की भांति ही कल्पित अनुभव द्वारा ईश्वर साक्षात्कार करने की सिद्धि भी मनुष्य को सत्य पा लेने में असमर्थ बना देती है। मनुष्य निरंतर सोचते रहकर एक कल्पित अनुभव प्राप्त कर लेता है इस आधार पर वह अपने इष्टदेवता का साक्षात्कार कर भी ले तो यह कल्पित अनुभव ही है सत्य नहीं है। इस प्रकार के कल्पित अनुभव का जन्म अनुकरण की प्रकृति से होता है।□

यहां अब यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका दर्शन कोई कल्पित अनुभव नहीं बल्कि मौलिक साक्षात्कार है जिस पर बाह्य से किसी व्यक्ति का प्रभाव या अनुकरण मानना कोरी कल्पना है। उनके दर्शन की तकनीक को हमें सजग होकर जानना है कि वह किस तरह अंधानुकरण न होकर मौलिक वृत्ति का प्रतिपादन करती है।

□भक्ति की धारणा में जिसे हम अपना इष्ट देवता मानते हैं उसका अनुकरण करने की प्रवृत्ति हममें जागती है और यही प्रवृत्ति हमें उनका कल्पित दर्शन कराती है। यह दर्शन सत्य नहीं होता। अनुकरण की प्रवृति हमें जड़ बना देती है। और 'स्व' जानने की शक्ति का विकास नहीं करने देती।□

इस प्रकार जब कभी हम 'स्व' को जानेंगे हम अपनी मौलिकता का दर्शन करेंगे तभी भगवान श्री के दर्शन की मौलिकता को समझ सकेंगे।

कुछ लोग मौलिकता को मात्र अन्य से भिन्नता समझते हैं परन्तु मौलिकता से मेरा अपना तात्पर्य है कि अन्य से अभिन्न होकर भी उसका अस्तित्व हो सकता है। परन्तु स्वानुभव के अभाव में उसका अस्तित्व

कदापि नहीं हो सकता।

जब भगवान श्री यह कहते हैं कि "मैंने गीता कभी पूरी नहीं पढ़ी...।" और गीता की विवेचना करते समय कृष्ण से इतने अभिन्न प्रतीत होते हैं जैसे कृष्ण ही बोल रहे हों। परन्तु उनकी विवेचना जो कि सर्वथा मौलिक होती है स्वानुभव-जन्य के होने के कारण अदृश्य शक्ति की तरह प्रभावित करती है—क्यों नही? मौलिकता अन्य से प्रभावित नहीं होती वरन् प्रभावित करती है।

उनके साहित्य का कुछ अंश पढ़ कर मुझे कभी ऐसा भी लगता है (जिसे आप अन्य अर्थों में अत्युक्ति कहेंगे) कि उनसे मैं पूर्व परिचित हूं (कदाचित पूर्व जन्म से) और यह बात नई नहीं है यद्यपि वह सब कुछ मेरी स्मृति में तब तक नहीं होता पर उनके शब्दों के अन्तर में उतर जाने के बाद एक झंकार के साथ पूर्व जन्मों की स्मृति की तरह कुछ अर्धपारदर्शी तत्व सामने आ जाता है और उनसे एक प्रकार की अभिन्नता का आभास होता है।

मौलिकता में विचारों की एक मान्यता को मैं श्रेष्ठ नहीं समझता। समानविचार होते हुए भी 'स्वअनुभूति' की मौलिकता ही नितांत श्रेष्ठ नितांत अकेली होती है। सदा अद्वैत हो जो वही श्रेष्ठ है।

सभी अवतार पुरुष कई अर्थों में मौलिक होते हुए भी अभिन्न हैं। व्यक्ति की शांति और समाज की क्रांति के लिए हमें आज उनकी मौलिकता में अभिन्नता को खोजना है। मुझे ऐसी अभिन्नता भगवान श्री की मौलिकता में दृष्टिगत हुई है, लगता है यही आज के मानव का धर्म है।

अंत में मात्र एक शब्द वंदना का भी है जो न तो पीपल वृक्ष की तरह बुद्धि को भयभीत करने वाला प्रेत ज्ञान हो (वरन् उसकी तरह विशद ब्रम्ह हो) और न तो वट-वृक्ष की तरह सर्वत्र रूढ़ियों से भरा दुरुह मात्र प्रकृतिवाद हो (वरन् उसकी तरह सघन सुफलदायक हो) परंतु चित्रणीय सुगम शाखाओं वाली मनोरम मौलश्री जैसी मौलिकता के आधार पर स्थापित हो जिनका दर्शन उन भगवान श्री रजनीश को मेरे मौलिक प्रणाम!

●

मुक्तक

★

मझधार बहुत गहरी थी, पतवारें टूटी,
लो नाव समझ लो, अब डूबी कि अब डूबी,
पर यह जो तुमने, पाल तान दिया नव-संन्यास का,
अब तो भव-सागर से भी हो जावेगी मुक्ति।

●

उदित हुआ है भाग्य तेरी कृपा से,
तूने जो मुझ जंसों को अपनाया है।
तुम्हें समर्पित किया सभी कुछ इस जीवन का,
दो उबार करो उजियारा इस जीवन का।

●

नित्य न छू पाता तुम्हारे श्री चरण,
पर रात दिन मूक भाव, तुम्हारे श्री चरणों में खोये रहते हैं,
स्पर्श करते जिन रजों को पद तुम्हारे,
उन रजों पर गीत मेरे झूमते हैं।

●

□ *स्वामी जगदीश भारती*
नारनौल (हरयाणा)

अनमोल वचन

★

- निर्वासना के लिए 'समझ' (प्रज्ञा) काफी है।
- चाक के चलने का राज, ठहरी हुई कील में होता है।
- किसी पर भी 'कुछ' थोपना बड़ी से बड़ी हिंसा है।
- हम दूसरे में वही देखते हैं जो हमारे भीतर होता है।
- जीवन विपरीत स्वरों के बीच एक सामंजस्य है।
- दुख का जो दंश है वह दुख में नहीं, वह हमारी अस्वीकृति में है।
- समर्पण की पूर्णता ही समाधि है।
  स्वयं का विसर्जन ही समर्पण है।
- संसार की सारी व्यस्तता पलायन है—स्वयं को स्वयं से, स्वयं के द्वारा।
- प्रेम 'असुरक्षा' में छलांग है, वह अज्ञात के हाथों में स्वयं का समर्पण है।
- संसार को लीला मात्र जानना संन्यास है।
- धर्म तो प्रयोग है; मात्र आस्था नहीं।
  धर्म तो अनुभव है, मात्र विश्वास नहीं।
- समझ बहुत छोटी है और जीवन विराट है। और यदि बुद्धि के भिक्षा-पात्र में सागर न समाये तो कुसूर सागर का तो नहीं है न ?
- मनुष्य पशु और परमात्मा के बीच डोलता हुआ अस्तित्व है।

□ संकलन : *रामनाथ शर्मा*
ताला (सतना)

बिन बाती बिन तेल

□ संकलन : स्वामी योग चिन्मय
पूना

▽

भगवान श्री रजनीश द्वारा दि. २३–६–७४ को पूना में दिए गए उपर्युक्त शीर्षक माला का तीसरा प्रवचन

△

प्रश्नकर्ता :

भगवान ! झेन संत अपने शिष्यों को सदा कहते रहे हैं कि ध्यान उस आदमी की तरह है जो एक चट्टान के किनारे खड़े हैं, वृक्ष को दांत से पकड़कर लटक रहे हैं, उसके हाथ किसी डाली को थामे हैं न पांवों को ही कोई सहारा है और चट्टान के किनारे खड़ा दूसरा आदमी उससे पूछता है 'बोधिधर्म भारत से चीन क्यों आये ?' यदि वह उत्तर नहीं देता है तो वह खो जाए अगर उत्तर देता है तो वह मर जाए। वह क्या करे ? और भगवान क्या ध्यान ऐसी असंभव साधना है कि उपनिषद् उसे छुरे की धार पर करना कहते हैं।

भगवान श्री :

ध्यान की साधना तो कठिन है लेकिन असंभव नहीं पर ध्यान की

अभिव्यक्ति असंभव है। ध्यान करना आसान है, ध्यान क्या है यह बताना अति कठिन है, करीब-करीब असंभव है क्योंकि ध्यान इतनी भीतर अनुभूति है, शब्द उसे प्रगट नहीं कर पाते और जो भी शब्दों से उसे प्रगट करने की कोशिश करता है वह अनुभव करता है कि जो कहना चाहता था वह नहीं कहा गया, जो नहीं कहना था वह शब्दों से प्रगट हो गया। जो कहना था वह भीतर छूट गया, खाली कोरे शब्द चले गये मुर्दा हैं, निष्पात हैं। ध्यान कर लेना इतना कठिन नहीं लेकिन ध्यान से जो जाना जाता है वह उसे बता देना जिसने कभी ध्यान न किया हो, करीब-करीब असंभव है। यह कहानी ध्यान की कठिनाई के संबंध में नहीं है। यह कहानी ध्यान को बताने के संबंध में है। कहानी बड़ी प्रीतिकर है। एक आदमी लटका है एक वृक्ष के पत्तों को मुंह से पकड़े हुए, मुंह ही एक मात्र सहारा है उसी से वह वृक्ष से लटका है, नीचे भयंकर खडड है, बोला कि गया और वहां उसे कोई पूछता है कि बोधि धर्म भारत से चीन क्यों गया ? पहले तो इस सवाल को समझ लें। यह झेन परम्परा का पारिभाषिक सवाल है।

कोई चौदह सौ वर्ष पहले एक बहुत अनूठा आदमी भारत से चीन गया। उस अनूठे आदमी का नाम था बोधि धर्म। भारत से जो लोग बाहर गये हैं इससे ज्यादा अनूठा आदमी कभी भारत से बाहर नहीं गया। बोधि धर्म चीन क्यों गया ? झेन फकीर इस सवाल को पूछते हैं। यह एक पहेली है। बोधि धर्म भारत से चीन गया, बड़े गहन कारण थे उसके, उसके पास कोई सम्पदा थी जो वह किसी को देना चाहता था लेकिन लेनेवाला आदमी न मिला मजबूरी में उसे चीन जाना पड़ा, खोजने, इस आशा में कि शायद कोई चीन में मिल जाए। सम्पदा सभी को तो नहीं दी जा सकती। हीरे उन्हीं को दिये जा सकते हैं जो पारखी हैं अन्यथा हीरे फेंक दिए जाएंगे, खो जाएंगे क्योंकि जो नहीं जानते उनके लिए तो हीरा पत्थर है। उनके लिए हीरा खिलवाड़ हो जाएगा और खोने में ज्यादा देर लगेगी। ध्यान की जो सम्पदा है वह तो अदृश्य है, उसके पारखी खोजना तो बहुत मुश्किल है, और जो उसे लेने को तैयार न हो उसे देने का कोई उपाय नहीं है, जिनके हृदय के द्वार बिल्कुल खुले हैं केवल वे ही उसे ले पाएंगे तो बोधि धर्म द्वार दरवाजे खटखटाता था अनेक लोगों के, आखिर भारत जैसे देश में जहां ध्यान की इतनी लंबी परम्परा है कि इतनी लंबी परम्परा

संसार में वहां भी नहीं। वहां बोधि धर्म को एक आदमी न मिला जिसको वह ध्यान की संपदा दे दे। इसलिए प्रश्न पूछने जैसा है कि बोधि धर्म चीन क्यों गया ?

लेकिन उसके पीछे कारण भी है, एक ही कारण है कि भारत के पास ध्यान की बड़ी पुरानी संपदा है, भारत ने उसे खो दिया। कुछ सम्पदाएं हैं जिनको अगर रोज नया किया जाए तो वे खो जाती हैं, कुछ सम्पदाएं ऐसी हैं कि अगर पुरानी हो जाएं सड़ जाती हैं। कुछ संपदाएं ऐसी हैं कि अगर आप अस्वस्थ हैं कि वे आपके हाथ में हैं तो आपके हाथ रिक्त हो जाते हैं। भारत की ध्यान की परम्परा अति प्रचीन है, इतिहास के पार जाती है यात्रा, प्रागेतिहासिक है। मोहन-जोदड़ो खोदो, हरप्पा जैसे पुराने अवशेष-वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई सात हजार वर्ष पुरानी है वहां भी मूर्तियां मिली हैं जो ध्यानस्थ हैं। सात हजार साल पहले भी हरप्पा और खजुराहों में कोई ध्यान कर रहा है फिर बोधि धर्म को भारत में कोई मिल क्यों न सका ग्राहक खरीददार, परंपरा इतनी पुरानी हो गयी और शब्द इतने घटे घटाए हो गए और शास्त्र इतने कंठस्थ हो गए कि लोग ध्यान के संबंध में तो जानने लगे, ध्यान के संबंध में जानना एक बात है, ध्यान को जानना बिल्कुल दूसरी बात है। प्रेम के संबंध में जानना एक बात है और प्रेम को जानना बिलकुल दूसरी बात है। आप पंडित भी हो सकते हैं प्रेम के संबंध में सारा शास्त्र पढ़ डालें, प्रेम पर शोध-कार्य भी कर सकते हैं, कोई विश्वविद्यालय आपको डिग्री भी दे दे, लेकिन प्रेम करना बात और है, क्योंकि प्रेम करने में तो मिटना होगा, प्रेम तो बड़ी खतरनाक यात्रा है, वहां तो अहंकार समाप्त होता है बूंद खोती है सागर में। प्रेम तो इस जगत् में असंभव जैसी घटना है, क्योंकि उसमें आप कम महत्वपूर्ण हैं और दूसरा ज्यादा महत्वपूर्ण, वहां आपकी आत्मा जैसे दूसरे में समा जाती है। जैसे वहीं उसका जीवन, आपका जीवन, उसकी मृत्यु आपकी मृत्यु हो जाती है। यह असंभव घटना है। दूसरे का साधन की तरह उपयोग नहीं, साध्य की तरह उपयोग असंभव है तो प्रेम तो बहुत कठिन है, प्रेम के संबंध में जानना बहुत आसान है। शास्त्र खरीदे जा सकते हैं, सिद्धांत कंठस्थ हो सकते हैं। ध्यान के संबंध में भारत को इतनी बातें पता चल गईं कि लोगों ने समझा कि अब ध्यान करने की कोई जरूरत नहीं, सब मालूम है और जब सब मालूम ही है तो और कुछ करने में क्या

रहा ? बुद्ध, महावीर खो गए, बुद्ध और महावीर की वाणी हाथ में रह गई। बोधिधर्म भटकता रहा, पंडित उसे मिले जो बड़े जानकार थे। शास्त्र जिनकी जीभ पर रखा था, सरस्वती के जो वरद-पुत्र थे और गणित में उनका कोई मुकाबला न था। तर्क उनसे करें तो हार के सिवाय आपको कुछ भी न मिलेगा, लेकिन वह आंखें न मिलीं जो ध्यानस्थ हों, वह हृदय न मिला जो ध्यान से भरा हो, वह व्यक्तित्व न मिला जो ध्यान की समाधिस्थ अवस्था में हो, जिसको सम्पदा बोधि धर्म दे दे। पंडित मिले बहुत, आचार्य मिले बहुत, जानकार मिले बहुत, अनुभवी न मिला। झेन फकीर पूछते हैं कि बोधि धर्म चीन क्यों गया ? भारत में न मिला ध्यान करने वाला कोई जो चीन जाना पड़ा ? यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि बोधि धर्म के जाने के साथ भारत का अध्यात्म तिरोहित हो गया। बोधि धर्म का जाना इस बात का सूचक था कि अध्यात्म समाप्त हुआ, अब यहां रूखे-सूखे लोग हैं जिनमें हरियाली खो गई, अब यहां विश्वास में खतरे हैं। धर्म का मन्दिर खोजना मुश्किल है, बोधि धर्म का भारत के बाहर जाना किसी ध्यानी व्यक्ति की तल श में, भारत की गरिमा जैसे अस्त हो गई, भारत से सूर्य जैसे विदा हो गया। लेकिन बोधि धर्म चीन ही क्यों गया ? पृथ्वी बड़ी है, कहीं भी जा सकता था आखिर चीन क्यों चुना ? यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। भारत क्यों छोड़ा ?

भारत इसलिए छोड़ा कि कोई व्यक्ति न मिला जिसे संपदा दे दे। चीन क्यों गया ? चीन में बड़ी आशा थी क्योंकि भारत में अगर बुद्ध पैदा हुए तो चीन में लाओत्से पैदा हुआ। दोनों करीब-करीब एक ही समय में पैदा हुए। तो जब भारत में बुद्ध थे, तब चीन में लाओत्से था और बुद्ध ने तो थोड़ा बहुत शब्दों का भी उपयोग किया लाओत्से ने शब्दों का बिल्कुल उपयोग नहीं किया। और भारत तो पांडित्य से मर गया, लेकिन लाओत्से की जीवनधारा अभी भी बह रही थी जो अभी पांडित्य से नहीं भरी थी क्योंकि लाओत्से का पूरा-पूरा जोर पांडित्य के विपरीत था। जानकारी के विरोध में था, सूचनाओं से कोई सार नहीं। लाओत्से का बुद्धत्व बुद्ध से भी ज्यादा शब्द शून्य है, जहां लाओत्से की हवा थी सोचा बोधि धर्म ने कि शायद वहां कोई व्यक्ति मिल जाए और अगर लाओत्से और बुद्ध का मिलन हो जाए तो जो धारा पैदा होगी वह सदियों तक बहेगी। यह एक 'क्रास ब्रीडिंग' का बड़ा गहरा प्रयोग था। हम पश्चिम

से सांड़ को खरीद के लाते हैं, भारतीय गाय और पश्चिम का सांड़—जो बच्चे पैदा होंगे वे सबल होंगे, सक्षम होंगे, ज्यादा दूध देने वाले होगे। जो हम सांड़ के साथ करते हैं, वह बोधि धर्म ने ध्यान के साथ किया। यहां बुद्ध की धारा थी, महावीरों की धारा थी, उपनिषदों की धारा थी, यह बड़ी गहरी क्रांतिकारी खोज थी, लेकिन उसका संभालनेवाला नहीं मिल रहा था, सम्पदा इतनी बड़ी थी कि इतना बड़ा हृदय नहीं मिल रहा था। शायद लाओत्से की धारा में कोई जिन्दा हो और अगर इन दोनों का मिलन हो जाए तो एक ऐसा नया जीवन प्रयोग होगा जो शायद बहुत जी सके और बोधि धर्म सही साबित हुआ। झेन वह परंपरा है जो बुद्ध और लाओत्से के मिलने से पैदा हुई तो झेन न तो बौद्ध हैं और न ताओवादी। वह दोनों का मिलन है इसलिए झेन में जो मुधुरिमा है वह न बुद्ध की धारा में है न लाओत्से में है। जैसे दोनों धाराएं मिलती हैं तो जिस बच्चे का जन्म होता है वह अनूठा होता है। जितने दूर की धाराएं हों उतनी ही अद्वितीय संतती पैदा होगी इसलिए हम भाई बहिन को शादी नहीं करने देते, क्योंकि भाई बहिन इतने करीब हैं जो बच्चा होगा अच्छा नहीं पैदा होगा। तनाव नहीं होगा और जब तनाव नहीं होगा तो जीवन क्षीण होगा। अगर भाई बहिन विवाह करें तो बच्चे की उम्र ज्यादा नहीं होगी, बच्चा जल्दी मर जायेगा। और बच्चे में प्रतिभा भी नहीं होगी, क्योंकि प्रतिभा के लिए बड़ी दूर की धाराओं का मिलना चाहिए तब एक नयी चीज की उत्पत्ति होती है। भाई बहिन इतने एक जैसे हैं कि उन्हीं जैसा ही बच्चा पैदा होगा, अद्वितीय नहीं होगा, बेजोड़ नहीं होगा। इसलिए सारी दुनिया में भाई बहिन की शादी को हम रोकते हैं, हम निकटों की शादी रोकते हैं। जितना दूर का हो अगर यह तर्क ठीक से समझा जाय और इससे जीवन शास्त्री राजी है कि तर्क ठीक है तो इसका मतलब यह हुआ कि जहां तक बन सके न केवल जाति, न केवल परिवार, निकटता को रोकना चाहिए बल्कि खून, रंग, भाषा जितनी दूर की हो, जितनी अंतरराष्ट्रीय शादी हो उतना बच्चा ज्यादा सप्राण पैदा होगा। और जब दूर दूर की धाराएं मिलती हैं तब ऐसा बच्चा पैदा होता है, ऐसा बहुत ही दफा हुआ है—बुद्ध और लाओत्से के मिलन से झेन पैदा हुआ। इस्लाम और हिन्दुओं के मिलन से सूफी चिन्तना पैदा हुई। इसाईयत

और यहूदियों के मिलन से हसीन पैदा हुआ तो ये धाराएं सबसे ज्यादा जीवंत धाराएं हैं। इस समय पृथ्वी पर जो सबसे ज्यादा मूल्यवान वह यह तीन धाराएं हैं। होना भी चाहिए। बुद्ध जैसा पिता और लाओत्से जैसी माता। लाओत्से जैसा पिता और बुद्ध जैसी मां मिल सके तो जो संतति होगी वह अप्रतिम होगी। क्यों गया बोधि धर्म भारत से चीन ?

बोधि धर्म बुद्ध जैसा था, बुद्ध भी मिल जाते तो बोधि धर्म को ठीक अपने जैसा पाते, पाते कि जैसे दर्पण में देख रहे हैं, वह लाओत्से की तलाश से गया और चीन में उसने खोज की और आदमी खोज लिया जिसके हृदय में ही अपने हृदय को उचेल सका, इस पर एक बड़ी जिम्मेवारी थी। महाकाश्यप को जो बुद्ध ने दिया था और महाकाश्यप के बाद जो अलग-अलग गुरुओं को तथ्यों से मिला था परम्परागत मिला था। ऐसा कठिन सवाल पूछ रहा है एक आदमी उससे, जो मुंह के बल लटका हुआ है झाड़ के ऊपर और उससे पूछ रहा है कि बोधिधर्म भारत से चीन क्यों गया ? कथा कहती है कि अगर यह आदमी बोले तो मरे क्योंकि वाणी में ही इसकी जो पकड़ है वृक्ष से वह छूट जायेगी, बोला कि मरा। लेकिन न बोले तो भटक जाए, न बोले तो भटक जाए इसलिये कि जिसके पास भी ध्यान की सम्पदा हो वह अगर देने से इन्कार करे तो वह सम्पदा खो जाए। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। इस जगत में दो तरह की सम्पदाएं हैं—एक वह अगर आप दें तो खो जाती है। धन है आपके पास अगर आप दें तो खो जाएगा अगर बचाना है अपना तो देना ही मत। दूसरे का छीनना, ऐसी सम्पदा जो देने से खो जाती है और छीनने से बढ़ती है उसको ही हमने पाप कहा है और एक और सम्पदा है पुण्य की जिसके नियम इससे ठीक विपरीत हैं, जिसको न दो, रोको तो मर जाती है। जितना बांटो उतना बढ़ती है। जितना बचाओ उतनी सड़ती है, बाहर की सम्पदा छीनना पड़ती है शोषण करना पड़ता है, बाहर की सम्पदा का दान करना पड़ता है, भीतर और बाहर के नियम बिल्कुल अलग हैं। यह कहानी कहती है कि अगर वह आदमी न बोले तो खो जाए, क्योंकि कोई पूछ रहा है ध्यान क्या है ? कोई पूछ रहा है बोधि धर्म भारत से क्यों गया ? वह यही पूछ रहा है कि ध्यान क्या है ? यह बुद्ध और लाओत्से का मिलन क्या है ? इस मिलन से जो जन्म हुआ वह क्या है ? वह रहस्य क्या है ? यह आदमी शायद उसे बोले तो पकड़ छूटती है

और खो जाए, न बोले तो भटक जाए यह आदमी क्या करे ? यह झेन पहेली है, साधक को नींद आती है तो वह इस पर ध्यान करे और पता लगाकर लाए कि वह आदमी क्या करे ? तुम मुश्किल में पड़ोगे, क्योंकि इसमें दोनों तरफ उपाय नहीं दिखते। बोला तो मर जाएगा। शायद बोल भी नहीं पाएगा और मर जाएगा। जैसे ही पहला शब्द निकलेगा कि पकड़ छूट जाएगी और वह खाई में गिर जाएगा। शायद पूरी बात कह भी न पाएगा इस आदमी से। न बोले तो भटक जाए और दो ही उपाय दिखते हैं, बुद्धि की समझ में नहीं आता इसके सिवाय अब और क्या किया जा सकता है। झेन गुरु अपने साधकों को कहता है कि बैठो, इस पर ध्यान करो कि यह आदमी क्या करे ? समझो कि तुम लटके हो, तुम क्या करोगे ? भूल जाओ वह कहानी को, तुम ही इस स्थिति में हो, क्या तुम्हारा उत्तर होगा ? क्या तुम्हारा प्रति उत्तर होगा, बोलोगे या चुप रहोगे ? बुद्धि के साथ मजा है, बुद्धि के पास सतत दो विकल्प होते हैं, तीसरा नहीं होता, बुद्धि द्वंद्वात्मक है, उसका द्वंद्व है हां और ना। बस दो ही उत्तर होते हैं और दोनों उत्तर पहले से ही बंद हैं।

एक उत्तर दोगे तो खो जाओगे, दूसरा उत्तर दोगे तो भी खो जाओगे और तीसरा उत्तर बुद्धि के पास नहीं है। अगर तुम इस पर सोचोगे ...सोचोगे...सोचोगे...तो एक ऐसी घड़ी आएगी जब तीसरे उत्तर का जन्म होगा वह बुद्धि से नहीं आएगा क्योंकि बुद्धि के पास तीसरा होता ही नहीं। उसके पास हमेशा दो होते हैं, एक दूसरे के विपरीत होते हैं और तीसरा बिल्कुल भिन्न है। हां और न से भिन्न है। ऐसा हुआ बोकुजू के एक शिष्य को उसने यह कहानी दी और कहा इस पर ध्यान कर। उसने कई तरकीबें खोजीं, क्योंकि यह दो तो उपाय थे नहीं। उसने कहा कि वह कुछ हाथ से इशारा करे। बुद्धि ने कुछ रास्ता खोजने की कोशिश की, हाथ से कुछ इशारा करके बताये, तो बोकुजू ने कहा जो शब्दों से कहना मुश्किल है क्या हाथ के इशारे से कहा जा सकेगा ? क्या उपाय है कह कर बताओ, बोधि धर्म क्यों आया चीन ? इसको हाथ के इशारे से कह कर बताओ। यह कोई पानी पीना तो नहीं है कि तुम हाथ के इशारे से बता दो—पानी पीना है कि भूख लगी है। शरीर के सम्बन्ध में थोड़ी सूचनाएं हाथ के इशारे से दी जा सकती हैं क्योंकि दूसरे को भी उनकी अनुभूतियां हैं। दूसरे को भी प्यास

लगी है, कभी तुम जब हाथ की अंजली बना के इशारा करते हो तो वह समझ जाता है कि प्यास लगी है, दूसरे को भी भूख लगी है कभी तो हाथ की मुट्ठी बांध के मुंह की तरफ इशारा करते हो तो वह समझ जाता है। इशारा काम का है अगर दूसरे का भी अनुभव वैसा हो जैसा तुम्हारा है। लेकिन अगर दूसरे को पता होता कि बोधि धर्म क्यों चीन आया वह तुमसे पूछता क्यों? ध्यान के संबंध में कुछ भी इशारे से कहना मुश्किल है, क्योंकि दूसरे का कोई भी अनुभव नहीं है, इसलिए भाष्य असमर्थ है। अगर मैं कहूं प्रेम, तुम थोड़ा-सा समझ जाते हो, मैं कहूं वृक्ष, तुम थोड़ा-सा समझ जाते हो, मैं कहूं प्रार्थना—तुम कुछ भी नहीं समझ पाते। मैं कहूं परमात्मा, शब्द गूंजता है, खो जाता है, भीतर कोई आकार निर्मित नहीं होता। कोई अर्थ नहीं बनता है, भीतर कोई सुगंध नहीं फैलती, कोई सत्य का साक्षात्कार नहीं होता। परमात्मा शब्द गूंजता है, खो जाता है जैसे हवाएं गूंजती हों—वृक्षों में, थोड़ी चहलपहल हुई, कुछ सूखे पत्ते गिर गए, हवाएं जा चुकीं, वृक्ष फिर मौन खड़े हैं। ऐसा ही परमात्मा गूंजता है, लेकिन भीतर कोई अर्थ निर्मित नहीं होता।

अर्थ होता ही तब निर्मित है जब तुम भी अनुभव से गुजरे होते हो, यही कठिनाई है। अगर तुम भी अनुभव से गुजरे हो तो इशारे की भी जरूरत नहीं। तुम अनुभव से नहीं गुजरे तो कोई इशारा काम नहीं करेगा और जब कि शब्द जो कि ज्यादा सूक्ष्म हैं, जो कि बारीक और नवीन हैं, जो कि नाजुक इशारे कर सकते हैं—जब वे असमर्थ हैं तो तो इतना स्थूल इशारा हाथ का कैसे काम आएगा? बोकुजू ने कहा भाग जा यहां से और दुबारा इस तरह के उत्तर मत लाना। ऐसे शिष्य बहुत उत्तर लाया, कभी उसने कहा कि आंख से, कभी उसने कहा कि मुंह को तो बंद रखे लेकिन भीतर आवाज करे। उसने कई रास्ते खोजे लेकिन रास्ता स्वीकार नहीं किया जा सका, क्योंकि ध्यान को किसी इशारे से नहीं कहा जा सकता और अगर यह आदमी ध्यान को उपलब्ध था तो इसकी आंखें तो कह ही रही थीं कि ध्यानस्थ है। अब और क्या किया जा सकता है? अगर आदमी दरवाजे पर खड़ा हुआ आंखों को समझ पाता तो पूछता ही नहीं, फिर क्या हुआ? साल बीत गए, शिष्य अनेक उत्तर लाया सब उत्तर अस्वीकार कर दिये गए। उसकी बुद्धि चक्कर खाती रही...खाती रही... खाती रही...थक गया, फिर उसने

खोज ही छोड़ दी। फिर उसे साफ दिखाई पड़ गया कि उत्तर हो ही नहीं सकता, यह स्थिति बेबूझ है। बहुत दिन तक शिष्य नहीं आया तो बोकुजू उसकी तलाश में गया, क्या हुआ ? यूं तो दो चार दिन में उत्तर खोज के ले आता था, देखा एक वृक्ष के नीचे शिष्य मौन बैठा है। बोकुजू ने उसे हिलाया, शिष्य ने आंखें खोलीं, उसकी आंखें शून्य थीं, उसके भीतर कोई विचार न था, उसके मन में आकाश पर कोई भी बदली न थी, कोई पक्षी न उड़ता था, वह ऐसे बैठा था जैसे कुछ हुआ ही नहीं, बोकुजू आया है यह भी जैसे कोई घटना नहीं घटी, उसकी आंखों में रत्ती भर फर्क न पड़ा, गुरु सामने खड़ा था उसने झुककर प्रणाम भी न किया। गुरु सामने खड़ा था जरा-सी भी झिझक उसके भीतर न आयी कि पूछेगा कि वह सवाल उस आदमी का क्या हुआ वह जो वृक्ष पर लटका है, उसने क्या उत्तर दिया ? न सवाल उठा, न जवाब उठा, न गुरु की मौजूदगी से कोई भेद पड़ा। बोकुजू झुका और शिष्य के चरण छू लिए। वह बात फिर नहीं उठाई गई, वह सवाल फिर नहीं पूछा गया, वह बात जैसे समाप्त ही हो गई, उत्तर मिल गया।

जब तक बुद्धि उत्तर देगी तब तक जवाब नहीं मिलेगा जब बुद्धि चुप हो जाती है तब उत्तर मिलेगा। उत्तर प्रश्न में छिपा है, वह बुद्धि के विकल्पों में नहीं है, वह बुद्धि के द्वंद्व में नहीं है, वह तुम्हारी निर्द्वन्द्वता में है और तुम कब होते हो निर्द्वन्द्व अखंड ? जब बुद्धि शांत होती है, जब तुम सोचते नहीं, तब तुम इकट्ठे होते हो, जब तुम सोचते हो तब तुम बंट जाते हो, जितने ज्यादा विचार उतने तुम्हारे खंड हो जाते हैं, जितना निर्विचार उतने तुम अखंड हो जाते हो, जब तुम अखंड हो वही उत्तर है। यह कोई प्रश्न उत्तर पाने को नहीं था, यह प्रश्न बुद्धि को थकाने को था। मैं जो भी ध्यान के प्रयोग तुमसे करने को कह रहा हूं वे सब प्रयोग तुम्हारे शरीर और तुम्हारी बुद्धि को थकाने के प्रयोग हैं। तुमसे कह रहा हूं कि 'दरवेश व्हिरलिंग' दरवेश नृत्य तुम घूमते ही जाते हो, घूमते ही जाते हो, चकरी खाते जाते हो, थोड़ी देर में बुद्धि भी थक जाती है, शरीर भी थक जाता है। अगर तुम थकने के पहले ही गिर गए तो चूक जाओगे। अगर तुम बिलकुल थक गए, इतनी भी उर्जा न बची भीतर कि एक विचार निर्मित हो, अचानक तुम शून्य हो जाओगे और उसी शून्य में उत्तर है कि बोधिधर्म चीन क्यों गया ? उसी शून्य में

उत्तर है कि ध्यान क्या है ? ध्यान में ही उत्तर है कि ध्यान क्या है ? और कोई उपाय नहीं, क्या करे वह आदमी ? वह कुछ भी न करे, वह सिर्फ ध्यान में रहे। न बोलने की जरूरत होगी क्योंकि बोला तो गिरेगा। न, न बोलने की जरूरत है क्योंकि नहीं बोला तो चूकेगा, यह थोड़ा-सा जटिल है क्योंकि हमें लगता है यही तो दो स्थितियां हैं, हमें लगता है बोलो या न बोलो। एक और भी स्थिति है जिसको कहते हैं शांत रहो, वह न बोलने से अलग है। न बोलने की स्थिति बोलने से विपरीत है, तुम बोलते हो तुम्हें कुछ करना पड़ता है, जब तुम नहीं बोलते तब भी तुम्हें कुछ करना पड़ता है, रोकना पड़ता है। मैंने तुमसे पूछा तुम्हारा नाम क्या है ? तुम बोलें तो तुम्हें प्रयत्न करना पड़ता है, तुम न बोलो तो तुम्हें उस प्रयत्न से अपने को रोकना पड़ता है क्योंकि नाम तुम्हें मालूम है, तुम्हारा नाम तुम्हें पता है। न बोले तो तुम्हें प्रयत्न करना पड़ता है रोकने का, कि न बोलूं। बोलो तो प्रयत्न करना पड़ता है, न बोलो तो प्रयत्न करना पड़ता है। शांत होना बिल्कुल तीसरी अवस्था है, वहां कोई प्रयत्न नहीं है, न बोलने का, न, न बोलने का। वह आदमी लटका ही रहे न तो बोले और न, न बोले क्योंकि दोनों में झंझट है, बोले तो गिरेगा, न बोले तो भटक जाएगा, वह बोलने की झंझट में ही न पड़े, न, न बोलने की झंझट में पड़े, वह चुनाव न करे। बोलना, न बोलना एक दूसरे के विपरीत है। न बोलना शांत होना नहीं है, न बोलने में भीतर आग जलती रहती है, न बोलने में तुम भीतर तो बोलते ही चले जाते हो, न बोलने में तुम बोलना तो चाहते थे, रोकते हो, न बोलना नकारात्मक बोलना है, वह भी बोलना है। किसी को तुम गाली दो यह बोलना है और फिर किसी को गाली न दो, रोको, तो गाली तो भीतर गूंजती चली जाती है। एक तीसरी अवस्था है गाली उठती ही नहीं, न तुम बोलते हो, न, न बोलते हो, गाली की लहर ही नहीं आती। इस तीसरी अवस्था का नाम ध्यान है। वह जो आदमी वृक्ष से लटका है वह लटका ही रहे, वह कुछ भी न करे, रत्ती भर भी चहल पहल उसके भीतर न हो। इस आदमी ने पूछा कि बोधि धर्म क्यों चीन गया ? इस प्रश्न से कोई भी उत्तर उसके भीतर न उठे, वह कोई उत्तर की तलाश ही न करे, तब न तो बोलना होगा और न, न बोलना होगा, तब वह द्वंद्व के पार हो जाए, तब वह शांत रहेगा जैसे किसी ने कुछ पूछा ही न था। जैसे किसी को कोई

जवाब देता ही नहीं है तब वह ध्यानस्थ होगा और ध्यान का उत्तर सिर्फ ध्यान है। जब भी कोई इतनी गहरी बात पूछता है तो शब्द तो छिछले हैं, ऊपर ऊपर हैं। इनसे उस गहराई की कोई खबर नहीं दी जाती, तुम्हें उस गहराई में खड़ा रहना पड़ेगा और अगर वह तुम्हारी गहराई न समझेगा तो तुम्हारे शब्द कैसे समझेगा ? नानइन से किसी ने पूछा कि सारी बात एक शब्द में कह दो, ज्यादा न तो मेरे पास समय है न सुविधा है, सार बात को एक शब्द का भी आग्रह मत करो अगर असार जानना है तो जितना कहो इतना बोल सकता हूं, लेकिन अगर सार जानना है तो एक शब्द का भी आग्रह न करो। तो उस आदमी ने कहा यह जरा ज्यादा है, संक्षिप्त करें लेकिन इतना संक्षिप्त नहीं, थोड़े में कहें लेकिन इतने थोड़े में नहीं कि आप बिल्कुल ही चुप रहें, एक शब्द, इशारे के लिए तो नानइन ने कहा 'ध्यान'। उस आदमी ने कहा काफी नहीं, थोड़ा बढ़ाएं, थोड़ी व्याख्या...नानइन ने कहा "ध्यान और ध्यान।" उस आदमी ने कहा यह पुनरुक्ति है, इससे कुछ भी सार नहीं हुआ थोड़ी और। तो नानइन ने कहा "ध्यान और ध्यान और ध्यान।" वह आदमी उठके खड़ा हो गया, उसने कहा कि यह पागलपन की बात है, आप वहीं बताए जा रहे हैं। नानइन ने कहा पहली तो बात जब तुमने शब्द का आग्रह किया तभी सब खो गया, एक शब्द मैंने किसी तरह कहा, कुछ थोड़ा उसमें बचा, अगर व्याख्या की तो वह भी खो जाता। ध्यान का उत्तर ध्यान के संबंध कुछ पूछा गया हो तो ध्यान ही है। अगर कोई तुमसे पूछे प्रेम क्या है ? तुम्हारा प्रेमपूर्ण होना ही उत्तर हो सकता है और कोई उत्तर नहीं हो सकता। तुम जो भी उत्तर दोगे वह छोटा पड़ेगा, ओछा पड़ेगा इसलिए सभी संत पीड़ित रहे हैं कि वे कह नहीं पाते जो कहना चाहते हैं।

रवीन्द्रनाथ ने अपने अंतिम दिनों में लिखा है, रवीन्द्रनाथ तो महाकवि, कोई छः हजार गीत उन्होंने लिखे हैं। पश्चिम में शैली को बहुत बड़ा कवि कहा जाता है उसने दो हजार गीत, शैली के सभी गीत संगीत में नहीं बांधे जा सकते, रवीन्द्रनाथ के सभी गीत संगीतबद्ध हैं तो और क्या उपलब्धि हो सकती है ? इस पृथ्वी पर महान् से महान् महाकवि, एक मित्र ने मरते समय उनसे कहा कि तृप्त हो तुम ? संतुष्ट हो जो पाना था तुमने पा लिया, यश, प्रतिष्ठा, ख्याति सब तुम्हें मिला। एक पैगंबर की तरह तुम पूजे गये, कवि की तरह

नहीं एक ऋषि की तरह तुम्हें सम्मान मिला और तुमने इतने गीत लिखे कि शायद दोबारा कोई न लिख सकेगा और हर गीत अनूठा है, तुकबन्दी नहीं है, हृदय से आया है। रवीन्द्रनाथ ने कहा कि बन्द करो यह सब बातचीत क्योंकि मैं बड़े दुःख में मर रहा हूं। जो मैं गाना चाहता था वह तो मैं अभी तक गा नहीं पाया। अगर तुम मुझसे पूछो तो मैं मरते इन क्षणों में परमात्मा से प्रार्थना कर रहा हूं कि यह भी क्या बात हुई, बामुश्किल पर ठोंक पीट के साज बिठा पाया था, अब गाने का वक्त करीब आ रहा था कि पर्दा गिरने लगा, अभी तो सिर्फ ठोंक-पीट कर रहा था अपने वाद्य यन्त्रों पर कि तैयारी हो जाए, मैं गौण हूं अभी गा कहां पाया था ? और जिसे लोगों ने संगीत समझा वह अभी साज बिठा रहा था और अब जबकि लगता है कि साज बैठने के करीब आया संगति बंधती थी, सुर सम्हले थे, भरोसा बढ़ा था और हृदय आतुरित था कि अब बहूंगा, अब गाऊंगा तो जाने का वक्त आ गया ! यह क्या मजाक है ? जो भी जानते हैं उन्हें यह मजाक ख्याल में आयेगा ही, क्योंकि जब वे कहने को समर्थ होते हैं तब यात्रा खोने के करीब आ जाती है, जब वे बता सकते थे तब जाने का वक्त आ जाता है, जबकि स्वागत होना था, समारंभ होना था, उनके आने का तब बिदा होना पड़ता है, जबकि वे पैदा होने के करीब थे तब मौत घट जाती है और ऐसा सदा ही होगा, इसमें किसी परमात्मा के हाथ कोई मजाक नहीं, यह जीवन की प्रक्रिया है कि जितना गहरा तुम पाओगे उतना ही बताना मुश्किल होता जायेगा। रवीन्द्रनाथ को अगर सौ साल की उम्र और दे दी जाय तो मैं कहता हूं कि सौ साल के बाद भी वे यही कहते मरते वक्त इससे कुछ भेद न पड़ता, उससे जरा भी भेद नहीं पड़ता। शायद पीड़ा और भी बढ़ जाती क्योंकि सौ साल में वे और भी गहरे हो जाते और जितनी भीतर गहराई बढ़ती है उतना बाहर तक खबर लाना मुश्किल होता जाता है। सत्य को कहा नहीं जाता, ध्यान को, प्रेम को बताया नहीं जा सकता, जिया जा सकता है।

इसलिए जीना ही बताने का एकमात्र ढंग है तो उस आदमी को न तो बोलने की जरूरत है, न, न बोलने की जरूरत है। वह ध्यान का फूल बना लटका रहे और क्यों ऐसी कहानी चुनी होगी इन झेन फकीरों ने क्योंकि कोई भी तो ऐसा वृक्ष के पत्तों को मुंह में पकड़ कर लटका नहीं, पर मैं तुमसे कहता हूं कहानी

नहीं है सभी लोग लटके हैं क्योंकि किसी भी क्षण मौत घट सकती है, बस इतना ही सहारा है जैसे दांत से दबा रखी हो वृक्ष की शाखा, बस इतना ही सहारा है, जरा में टूट सकता है यह धागा यह धागा बहुत बारीक है, मकड़ी के जाल से भी ज्यादा बारीक, जरा सा इशारा और यह टूट सकता है, यह मतलब है कथा का । हर आदमी ऐसा ही लटका है, नीचे खाई है, किसी भी क्षण मौत घट सकती है ।

महाभारत में एक मधुर घटना है । भिखारी भीख मांग रहा है युधिष्ठिर के द्वार पर। पांडव— पांचों भाई अज्ञातवास में छिपे हैं, मांगनेवाले को भी पता नहीं छिपे हुए सम्राट हैं । युधिष्ठिर सामने ही पड़ गये हैं, उन्होंने कहा कल आ जाना । भीम खिलखिला कर हंसने लगा । युधिष्ठिर ने पूछा कि तुम पागल हो ? भीम ने कहा मेरे बड़े भाई ने समय को जीत लिया है ।... एक भिखारी को उन्होंने वायदा किया है कि कल आ जाना । युधिष्ठिर दौड़े, उस भिखारी को वापस लाए और कहा कि भीम ठीक कहता है, वैसे वह बुद्धि से जरा मंद है लेकिन फिर भी कभी-कभी उसे चमक आ जाती है, कभी-कभी मंद बुद्धि लोगों को चमकें आ जाती हैं और बहुत कुशल बुद्धि लोग चूक जाते हैं । कुशलबुद्धि लोग अक्सर पंडित हो जाते हैं जो युधिष्ठिर को न दिखाई पड़ा । वे धर्मराज थे । धर्म के ज्ञाता थे, लेकिन धर्म के ज्ञाता पर शास्त्र आंखों पर छप जाता है फिर सत्य नहीं दिखाई पड़ता । जो है वह नहीं दिखायी पड़ता, पर्दे शास्त्रों की इकट्ठी हो जाती हैं इसलिए जो दिखायी नहीं पड़ा युधिष्ठिर को वह दिखायी पड़ गया भीम को । भीम सीधा सादा आदमी है, निष्कपट है, लड़ सकता है, क्रोधित हो सकता है, प्रेम कर सकता है लेकिन पंडित नहीं है । जी सकता है लेकिन शब्दों का कोई मालिक नहीं । उसे यह बात दिखाई पड़ गयी कि यह भी क्या मजाक है, कल का कोई भरोसा नहीं और तुम भिखारी से कहते हो कल आ जाना । कल तुम रहोगे या नहीं तुम्हें पक्का है ? कल भिखारी बचेगा ?

चीन में कथा है ताओ को स्वीकार करने वाले लोगों की कि एक सम्राट नाराज हो गया अपने वजीर पर उसे उसने जेल में डाल दिया लेकिन जिस दिन उसको फांसी लगनेवाली थी, उसके घर के लोग रो रहे थे, छाती पीट रहे थे अचानक वह घोड़े पर सवार घर वापस लौट आया । पत्नी को भरोसा न हुआ,

बेटों को भरोसा न हुआ कि यह क्या हुआ ? क्या चमत्कार हुआ, हम तो समझे थे कि बस छः बजे शाम को फांसी हो जाने वाली है। वजीर ने कहा चमत्कार ही समझो, नियम है राज्य का कि घंटे भर फांसी के पहले सम्राट आता है जिसकी फांसी हो रही है उससे मिलने, वह मिलने मुझसे आया था और जब वह मिलने मुझसे आया तो मैंने सोचा एक दांव लगाना बुरा नहीं, मैं रोने लगा, मुझे रोता देख सम्राट ने पूछा कि तू और रोता है ? मैं तो सोचता था कि तू एक बहादुर आदमी है, तूने अनेक युद्ध लड़े, तू अनेक बार जीता, तू रोएगा यह मैं सोच भी नहीं सकता। मैंने कहा कि मैं इसलिए रो भी नहीं रहा हूं। मौत देख कर नहीं रो रहा हूं, तुम्हारे घोड़े को देखकर रो रहा हूं जो दरवाजे के बाहर बंधा है। सम्राट हैरान हुआ उसने कहा कि घोड़े को देखकर रोने की क्या बात है ? वजीर ने कहा कि मैं एक कला सीखा हूं कि मैं घोड़ों को आकाश में उड़ना सिखा दूं। लेकिन एक खास जाति का घोड़ा चाहिए उसे खोजता रहा जिन्दगी भर वह न मिला और जिस घोड़े पर बैठ कर तुम आये हो यही उस जाति का घोड़ा है। रो रहा हूं कि सारी कला व्यर्थ गई। घंटे के बाद तो मुझे मरना है अब तो कोई उपाय नहीं, जो जानता था मेरे हाथ खो जाएगा। सम्राट लोभी स्वभाव का था, अगर उसके पास उड़नेवाला घोड़ा हो सके तो जगत में उसका कोई मुकाबला न हो सके। उसने कहा कि ठहर, घबड़ा मत, कितना समय चाहता है ? तो वजीर ने कहा—एक साल, एक साल में इस घोड़े को उड़ना सिखा दूंगा। सम्राट ने कहा—कुछ हर्ज नहीं, कुछ अड़चन की बात नहीं अगर एक साल में घोड़ा उड़ना सीख गया तो तेरी मौत तो बचेगी ही, मैं अपनी लड़की से तेरी शादी भी करूंगा और आधा राज्य तुझे दे दूंगा। लेकिन अगर एक साल बाद घोड़ा उड़ना नहीं सीख पाया तो तेरी फांसी हो जायगी। पत्नी और जोर से छाती पीट के रोने लगी कि यह भी तुमने क्या किया क्योंकि मुझे भली भांति पता है ऐसी कोई कला तुम जानते नहीं। पति ने कहा—वह तो मुझे भी पता है लेकिन साल भर में क्या भरोसा ! घोड़ा मर जाए, सम्राट मर जाए, मैं मर जाऊं। साल भर एक लम्बा समय है और दुनिया में चमत्कार तो घटते हैं कौन जाने घोड़ा सीख ही जाए, उड़ना सीख जाए, साल भर काफी है, बहुत ज्यादा है। भीम को दिखाई पड़ गया कि एक दिन का भरोसा नहीं,

कल तुम बचो ना बचो, देने की हालत बचे न बचे, यह भिखारी बचे न बचे, फिर वह वचन अधूरा रह जाए। धर्मराज को भी लोग लिखेंगे कि तुम झूठ बोले। युधिष्ठिर दौड़े उस भिखारी को भिक्षा दी। कहा कि तू जल्दी ले जा देर न हो जाए। हम सब लटके हैं, किसी भी क्षण शाखा टूट सकती है, किसी भी क्षण मुंह खुल सकता है और क्यों यह कथा इस तरह चुनी। क्योंकि जब आदमी मरता है तो अक्सर मुंह खुल जाता है, इसलिए झेन फकीर कहते हैं मुंह से पकड़के हमने रखी है, जब आदमी मरता है तो मुंह खुल जाता है, पकड़ छूट जाती है। हाथ वगैरह से पकड़ने का उपाय नहीं। मुंह से ही पकड़े हुए हैं।

ऐसी यह बात और भी गहराई में सच है, क्योंकि जिस श्वास के धागे से हम बंधे हैं वह हमारे मुंह से जुड़ा है, हाथों से नहीं, श्वास कटी हम कट गए। अगर जीवन को हम एक वृक्ष समझें तो श्वास के धागे से हम मुंह से उससे बंधे हैं, श्वास ही हमें रोके हुए है, श्वास गई फिर हाथ से श्वास को पकड़ने का कोई उपाय नहीं। इसलिए शब्द हमें कुछ कहेंगे ही नहीं, मुंह से पकड़े हुए हैं और लटके हैं—प्रतिपल मौत है और जीवन हर क्षण खतरे में है। जो जानता है वह बोलेगा भी नहीं क्योंकि बोलते से ही सब गलत हो जाता है, सत्य को बोला नहीं जा सकता—बोलते ही से सब गलत हो जाता है क्योंकि सत्य बोला ही नहीं जा सकता। फिर बुद्ध बोलते हैं, कृष्ण बोलते हैं, बोलते ही चले जाते हैं। सवाल उठता है—जब सत्य को बोला नहीं जा सकता तो बुद्ध बोलते क्यों? चुप क्यों नहीं हो जाते। बुद्ध जो भी बोलते हैं सत्य नहीं, सत्य तो बोला ही नहीं जा सकता। बुद्ध कुछ और बोल रहे हैं। वह ऐसा ही है जैसे बच्चों को मिठाई बांटी जा रही हो ताकि बच्चे बैठे रहें, कुछ और बिठाने का आयोजन है मगर मिठाई न बांटी जाए तो बच्चे भाग जाएं। इसलिए हम मंदिर में प्रसाद बांटते हैं, मिठाई बांटते हैं। बुद्ध मिठाई बांट रहे हैं—वह प्रसाद है, क्योंकि कुछ बच्चे सिर्फ मिठाई को ही समझ सकते हैं और कोई चीज नहीं समझ सकते। मैं तुमसे बोल रहा हूं, जो बोल रहा हूं वह सत्य नहीं। वह सत्य हो नहीं सकता। बोलते ही सत्य खो जाता है, खड्ड-खाई में गिर जाता है आदमी, वहां से कुछ बोला नहीं जा सकता। एक शब्द बोले कि गए, फिर तुमसे बोल रहा हूं—वह मिठाई बांटना है। उस बोलने के बहाने तुम यहां बैठे हो

अगर मैं चुप हो जाऊं तुम जा चुके, मेरी चुप्पी में तुम न बैठ सकोगे। बोलने के बहाने तुम बैठे हो, वह सिर्फ मिठाई है, वह प्रसाद है, तुम शायद प्रसाद लेने मंदिर आए हो, प्रार्थना करने नहीं। लेकिन प्रसाद के बहाने शायद प्रार्थना भी हो जाए, बोलने के बहाने शायद मेरे पास बैठे-बैठे तुम्हें शांति का सुर भी पकड़ जाए, शायद शून्य की झलक भी आ जाए। तो यह केवल बहाना है। बुद्ध बोलते हैं वह बहाना है, बुद्ध चाहते तो हैं वह देना तुम्हें जो कि बोल के नहीं दिया जा सकता लेकिन तुम शब्द ही समझ सकते हो, इसलिए शब्द का उपयोग है। वह तुम्हारे लिए है, सत्य के लिए नहीं। तुम्हारे कारण, सत्य के कारण नहीं, जो भी बोला जाएगा वह बोलते ही असत्य हो जाता है इसलिए सब बोलना कथा है, कहानी है।

□ मैं जो इतनी कहानियों का उपयोग करता हूं उसका कारण कुल इतना है कि सब बोलना एक कहानी है, सब बोलना एक पुरान है। सत्य को तो जाना जा सकता है।□

जानने की यात्रा भी कठिन तो है, असंभव नहीं। लेकिन दोनों बातें समझ लेनी जरूरी हैं, ध्यान में उतरना कठिन है इसलिए नहीं कि ध्यान कठिन है बल्कि इसलिए कि तुम जटिल हो।

एक आदमी नदी के किनारे खड़ा है, तैरना कठिन नहीं है लेकिन डर के मारे वह नीचे पैर ही नहीं रख पाता, डर के मारे पानी में नहीं उतर पाता, वह डर कठिनाई पैदा करता है। तैरना कठिन नहीं है। इस आदमी को फेंक दिया जाए पानी में, यह तैरना, हाथ पैर तड़फड़ाना शुरू कर देगा। तैरने में और अनजान आदमी के हाथ पैर तड़फड़ाने में बहुत फर्क नहीं है। शैली का फर्क है, जरा सी व्यवस्था का फर्क है अगर तुम्हें कोई ऐसे ही धक्का दे दे पानी में तो भी तुम तैरोगे। लेकिग तुम्हारे तैरने में संगति न होगी। यह भी हो सकता है तुम डूब जाओ। नदी के कारण तुम न डबोगे, उल्टा सीधा तैरने की वजह से डूब जाओगे। तुम खुद ही उलझन खड़ी कर लोगे। जिस दिन तुम तैरना सीख जाओगे क्या सीखोगे तुम ? यही हाथ पैर का फेंकना, तड़फड़ाना, थोड़ा व्यवस्थित हो जाए, तुम थोड़े आश्वस्त हो जाओगे, भय कम हो जाएगा इसलिए जो तुम्हें सिखाता है वह तैरना नहीं सिखाता सिर्फ तुम्हें आश्वासन सिखाता है, बाकी तैरना तुम जानते हो, तो गुरू के पास कोई ध्यान नहीं सीखना सिर्फ आश्वासन सीखना है क्योंकि ध्यान में

उतरना छलांग लगाना है। किसी का भरोसा चाहिए, वह कोई कहता है, कूद जाओ, डरो मत मैं खड़ा हूं, मैं सम्हाल लूंगा। जो लोग भी तैरना सिखाते हैं उनकी कुल कला इतनी है कि अपना भरोसा दिलाते हैं कि मैं खड़ा हूं। तुम जानते हो यह आदमी यहां है उसको तुमने नदी पर तैरते देखा, कोई डर नहीं है, बस, तुम्हारे डर को कम करने की जरूरत है। गुरू तुम्हारे डर को काटता है। गुरू भगवान नहीं दे सकता, भय को काट सकता है क्योंकि तुम भगवान हो। तुम्हारी हिम्मत बढ़ेगी, तुमने छलांग की कि तैरना तो तुम्हें आता ही है, इसलिए एक बार तैरना आ जाए तो फिर वह कभी नहीं भूलता। बड़ी मजे की बात है और सब चीजें भूल जाती हैं, तैरना क्यों नहीं भूलता ? तुम तीस साल तक मत तैरो, भूलोगे नहीं, तीस साल तक और कोई चीज याद रखने की कोशिश करो, तीस साल तक मां को न देख पाओ तो मां का चेहरा भूल जाए, संदिग्ध हो जाओगे। तीस साल तक भाषा का उपयोग न किया तो भाषा भूल जाएगी, तीस साल लम्बा वक्त है, लेकिन तीस साल तैरना मत तो भी भूलोगे नहीं, पानी में उतरे कि तैरना है। जरूर तैरने में कुछ फर्क है, तैरने का सम्बन्ध तुम्हारी स्मृति से होता तो तुम भूल जाते, तैरना तुम शायद जानते ही हो इसका सम्बन्ध स्मृति से नहीं, इसको तुमने कभी सीखा ही नहीं। अगर सीखा होता तो भूल सकते थे इसका सिर्फ अविष्कार हुआ है, यह मौजूद था। तुम सिर्फ पहचाने क्योंकि 'रेकाग्नाइज' किया कि मैं जानता हूं और जिस दिन तुम ठीक से पहचान लोगे उस दिन फिर तैरने की भी जरूरत नहीं पड़ती ! कुशल तैराक नदी में लेट जाता है, हाथ पैर भी नहीं तड़फड़ाता, नदी ही उसे संभालती है इतनी भी जरूरत नहीं रहती क्योंकि उसका भय बिलकुल कम हो गया है। भय ही डुबाता है, नदी नहीं डुबाती। इसलिए मुर्दे को डुबाना मुश्किल है क्योंकि मुर्दे को भयभीत करना मुश्किल है। मुर्दे को छोड़ दो नदी में वह तैरता जाए, लाख नदी कोशिश करे, कितनी ही गहरी हो, नदी मुर्दे को नहीं डुबा सकती। जिंदा को डुबाती है क्योंकि जिंदा भयभीत होता है, तब जरा सोचने जैसा है, कि नदी डुबाती है या भय डुबाता है ? तैरने में कठिनाई है या तुम्हारे भयभीत चित्त की जटिलता है ?

तुम्हारे भय में सारी जटिलता है, ध्यान तो सरल है तुम सरल हो, तुम्हारी कठिनाई जितनी घटेगी उतना ही ध्यान सरल होता जाएगा। जिस दिन तुम्हारे भीतर कोई कठिनाई न

होगी, तुम पाओगे ध्यान इतना सरल है, जैसे श्वास लेना। तुम्हें कुछ भी नहीं करना होगा। एक अर्थ में ध्यान से सरल कुछ भी नहीं है, क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है। दूसरे अर्थ में ध्यान से कठिन कुछ भी नहीं है क्योंकि तुम बहुत जटिल हो गए हो। तुम्हारी जटिलता काटने में ही सारी साधना है, लेकिन यह असम्भव नहीं है क्योंकि जटिल तुम हुए हो, जानकर हुए हो कोशिश कर कर हुए हो। विपरीत यात्रा करोगे जटिलता घट जाएगी। तुम्हारी हालत ऐसी है जैसे कोई आदमी कमर झुकाके चलने का अभ्यास कर ले, कमर झुका के चले, साल दो साल अभ्यास करना पड़े फिर सरल हो जाए। फिर उसको सीधी कमर करना मुश्किल हो जाए, जन्मों जन्मों तक तुम विचार के साथ चले हो। विचार ने तुम्हारी कमर तिरछी कर दी है, उसके कुछ फायदे हैं।

इस वजह से मैंने सुना है एक गांव में एक आदमी था। रोज राज्य में युद्ध होते रहते थे, जवान पकड़ लिये जाते, स्वस्थ आदमी पकड़ लिए जाते, तो उसने पहले ही से झुक के चलना शुरू कर दिया। धीरे धीरे उसकी कमर तिरछी हो गई, जवान पकड़ लिये जाते लेकिन उसे कोई कभी नहीं पकड़ता था। वह सोचता था कि यह झुक के चलने का कोई हर्जा तो है नहीं जब चाहेंगे सीधे खड़े हो जाएंगे, इसमें लाभ ही लाभ था लेकिन थोड़े दिन में उसने पाया कि अब सीधे खड़े होना असंभव है। अब सीधे खड़ा हो जाना असंभव है, कमर झुक ही गई।

इन्वेस्टमेंट जब भी तुम करते हो किसी गलत चीज में तो थोड़ा होश से करना, उससे कोई लाभ दिखाई पड़ रहा हो भला तात्कालिक, लम्बे अर्सों में मंहगा पड़ जाएगा। विचार का कुछ लाभ है। चिंता का कुछ लाभ है, तनाव का कुछ लाभ है इसलिए तुम तने हो, चिंता से भरे हो। इस जगत में कुछ चीजें बिना चिंता के नहीं मिलती। इस जगत में जो निश्चिन्त है वह कुछ चीजें तो पा ही नहीं सकता। धन कमाना बहुत ही मुश्किल है जो निश्चिन्त है, वह दिल्ली नहीं पहुंच सकता, राज पदों पर बैठना कठिन है, जो निश्चिंत है वह दूसरों की छाती पर सवार नहीं हो सकता। क्योंकि जब तुम दूसरों की छाती पर सवार होते हो तो चिंता पकड़ती है क्योंकि दूसरों को भी तुम मौका देते हो तुम्हारी छाती पर सवार होने की कोशिश करे। कम से कम तुम्हारे छुटकारे से बाहर निकलने की चेष्टा करे। जब तुम पद की तलाश में जाते हो तो चिंता स्वाभाविक है। एक राज्य के मुख्यमंत्री मेरे पास आते थे, वह हमेशा कहते कोई तरह से मेरी

चिंता से मुझको छुटकारा दिला दो। मैंने उनसे कहा कि एक बात साफ कर लो अगर मुख्यमंत्री रहना तो चिंता कुशलता प्राप्त करो, छुटकारे की बात मत करो क्योंकि मुख्यमंत्री पद नहीं बचेगा अगर चिंता से छुटकारा करना है और अगर चिंता से ही छूटना है तो यह तैयारी रखो कि मुख्यमंत्री पद छूट जाए। वे बोले आप तो आपकी कृपा हो तो दोनों चल सकते हैं। किसी की कृपा से दोनों नहीं चल सकते। फिर आपका आशीर्वाद चाहिए मैं आशीर्वाद दे भी नहीं सकता क्योंकि यह होने वाला नहीं। चिंता न हो और मुख्य मंत्री का पद बना रहे, कैसे होगा? राकफेलर होना चाहते हैं, और भिखमंगे की तरह शांत सोना भी चाहिए दोनों नहीं हो सकते। भिखमंगा शांति से सो सकता है क्योंकि खाने को कुछ नहीं है इसलिए अशांति और चिंता का कारण क्या है? तुम्हारे पास जितना खाने को होगा उतनी अशांति और चिंता बढ़ेगी। लेकिन आदमी इसी मूढ़ता का प्रयोग करना चाहता है जीवन में, इसी आशा में कि चिंता भी न रहे धन भी हो, पद भी हो, प्रतिष्ठा भी हो, महत्वाकांक्षा भी पूरी हो और चिंता भी न हो। तुम असंभव की मांग कर रहे हो, यह असंभव होनेवाला नहीं है, स्पष्ट हो जाना जरूरी है। चिंता जायेगी तो महत्वाकांक्षा जाएगी, तब ध्यान सम होगा। इसलिए बहुत लोग ध्यान में उत्सुक होते हैं लेकिन गलत कारण से उत्सुक होते हैं और जो धंधा करने वाले गुरु हों वह समझते हैं कि किस कारण से लोग उत्सुक होते हैं। आधुनिक योगी प्रचार ही करते हैं इस जगत में भी लाभ होगा उस जगत में भी लाभ होगा। ध्यान करोगे, धन भी मिलेगा, धर्म मिलेगा। अमरीका में अगर किसी से कहा जाये कि सिर्फ धर्म मिलेगा, तो वह उत्सुक नहीं होने वाला है, धर्म चाहता कौन है? लोग तो धन चाहते हैं और धन के साथ साथ अगर शांति भी मिलती हो तो लोग लेने को तैयार हैं। लेकिन बात ही व्यर्थ है। चिंता का कुछ लाभ है इसलिए तो लोग चिंतित हैं नहीं तो लोग चिंतित क्यों होते? लोग बिना कारण चिंतित हैं? बिना लाभ के चिंतित हैं? तुम चिंता छोड़ना चाहते हो लाभ बचा लेना चाहते हो, यही जटिलता है। जिस दिन तुम्हें यह साफ हो जायेगा उस दिन तुम चिंता को उतार कर रख सकते हो लेकिन साथ ही लाभ भी जाता है चिंता का। महालाभ के द्वार खुलते हैं लेकिन उनका तुम्हें कोई पता नहीं है। सरलता चाहिए और तुम्हारी सरलता का अर्थ है विपरीत दिशाओं में यात्रा मत करो। तुम सरल हो जाओ, तुम

विपरीत दिशाओं में चलोगे तो जटिल हो जाओगे। एक आदमी जो बैलगाड़ी में दोनों तरफ बैल जोत लिये हैं वह दोनों तरफ हांक रहा है बैलगाड़ी कहीं नहीं जा रही है, वह परेशान हैं, वह चिल्ला रहा है। वह कह रहा है, वह कहता है—रास्ता बताओ? उससे मैं कहता हूं एक दिशा के बैल खोल दो, दोनों जोड़ियों को एक ही दिशा में जाने दो। यह गाड़ी अभी सरपट भागेगी पर दोनों दिशाओं में उसके लक्ष्य हैं, इस तरफ दूकान है इस तरफ मंदिर है। इस तरफ चिंता है, इस तरफ शांति है। इस तरफ धन है, इस तरफ ध्यान है। दोनों वह चाहता है। वह कहता है आप कहते तो ठीक हैं। लेकिन ऐसा आशीर्वाद दो कि बैलगाड़ी दोनों मंजिलों पर पहुंच जाए। इसी आशीर्वाद की तलाश में चमत्कारी गुरुओं की खोज करता है क्योंकि मेरे जैसा आदमी यह आशीर्वाद तो दे ही नहीं सकता। क्योंकि जो देता है वह या तो मूढ़ है या शैतान है। इस आशीर्वाद का आश्वासन देना भी संघातक है, क्योंकि उस आदमी का जीवन नष्ट हो रहा है। उसकी ऊर्जा बेकार हो रही है। विपरीत लक्ष्य एक साथ नहीं पाये जा सकते। यह तुम्हें साफ हो जाये तो तुम सरल हो जाओगे। सरलता का अर्थ है तुम्हारे जीवन में विपरीत खो गये, तुम्हारा जीवन एक लयबद्ध धारा हो गया। तुम एक तरफ बढ़ना शुरू हो गये, फिर कोई अड़चन नहीं, फिर तुम्हारी सरिता ध्यान के सागर में अपने आप गिर जायेगी। फिर तुम्हें ध्यान सीखने की भी शायद जरूरत न पड़े क्योंकि ध्यान कोई सीखा नहीं जा सकता, सरल व्यक्ति के जीवन में ध्यान के फूल लगना शुरू हो जाते हैं—तो तुम से मैं कहूंगा सरल हो जाओ, निर्दोष हो जाओ और ध्यान रहे जब मैं कहता हूं निर्दोष हो जाओ तो मेरा मतलब यह नहीं कि तुम सिगरेट मत पीना, तो निर्दोष हो जाओगे कि तुम शराब मत पीना तो निर्दोष हो जाओगे कि तुम मांस मत खाना तो तुम निर्दोष हो जाओगे, नहीं, हालांकि मैं जानता हूं तुम निर्दोष हो जाओगे तो तुम सिगरेट न पी सकोगे, शराब तुम न छू सकोगे, मांसाहार असंभव होगा। लेकिन तुम शराब न पीओ, मांस न खाओ, सिगरेट न पीओ तो तुम निर्दोष हो सकोगे यह मैं नहीं कहता। 'इतना सस्ता नहीं' है मामला क्योंकि बहुत से लोग न शराब पी रहे हैं, न मांस खा रहे हैं, न सिगरेट पी रहे हैं और निर्दोष भी नहीं हैं। बल्कि कई दफा तो ऐसा होता है कि ऐसे आदमी ज्यादा खतरनाक हैं। हिटलर न शराब पीता है न मांस खाता है न सिगरेट पीता है। हिटलर शुद्ध शाका-

हारी है, शुद्ध शाकाहारी ही इतना उपद्रव कर सकता है जितना हिटलर ने किया। मुसोलिनी शुद्ध शाकाहारी है, इन दो शाकाहारी ने इस पृथ्वी पर जितना नर्क खड़ा किया उतना कोई मांसाहारी कभी नहीं कर पाता। अगर साधुओं से पूछो तो हिटलर बिल्कुल साधु मालूम पड़ेगा न फिल्म देखता है, न संगीत में उसे रस है, न नाच देखने जाता है, एक अर्थ में करीब-करीब ब्रह्मचारी है, क्योंकि स्त्री में उसे रस नहीं, ब्रह्म मुहूर्त में उठता है और करीब-करीब अपनी कोठरी में बंद है। लेकिन बड़ा विस्फोटक आदमी सिद्ध हुआ। तो मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम इन चीजों को छोड़ दोगे तो सरल हो जाओगे। अगर तुमने सरलता के लिए इन्हें छोड़ा तो तुमने गणित पहले बिठा लिया, यही तो तुम्हारी जटिलता है। तुमको कोई भरोसा दिला देता है कि तुम सिगरेट न पीओ तो तुम्हें मोक्ष मिल जायेगा, तो तुम छोड़ देते हो। कभी तुमने सोचा कि कितने सस्ते में तुम मोक्ष पाना चाहते हो? सिगरेट छोड़कर तुम मोक्ष पाना चाहते हो, सिगरेट छोड़कर अगर मोक्ष मिलता हो तो पाने योग्य भी नहीं क्योंकि कीमत कितनी? अगर शराब छोड़ कर मोक्ष मिलता हो तो पाने के योग्य भी नहीं कितना मूल्य होगा उसका जो शराब छोड़ने से मिल जाता हो? नहीं, तुम क्या करते हो उससे बहुत सवाल नहीं है। तुम्हारी सरलता का सम्बन्ध है कि तुम विपरीत दिशाओं में मत बहो। तुम जो भी करो उसमें एक संगति हो, उसमें एक आंतरिक संगीत हो। उस में एक विघटन और विरोध न हो: सरलता का अर्थ है तुम एक तरफ प्रवाहित रहो और यही बुद्धिमत्ता की निशानी है कि तुम बहुत तरफ न बहो, बहुत दिशाओं में यात्रा मत करो, तुम्हारी जीवन ऊर्जा एक तीर की तरह चले तो तुम लक्ष्य पर पहुंच जाओगे, लक्ष्य दूर नहीं है, सरल होते ही चित्त ध्यान को उपलब्ध हो जाता है। इस कक्षा में ध्यान की कठिनाई नहीं बतलाई गई है। बताया गया है ध्यान के संबंध में बताना कठिन है। एक तो कठिनाई है बुद्ध की जब ये छः वर्ष तक ध्यान में साधना करते हैं वह कुछ बहुत बड़ी नहीं है, दूसरी कठिनाई है चालीस वर्षों तक जब वे लोगों को समझाते हैं। वह उनकी दूसरी कठिनाई बड़ी है। पहली कठिनाई तो वह छः साल में पार कर गये, दूसरी कठिनाई वे चालीस साल में भी पार नहीं कर पाये। पहली कठिनाई तो सभी लोग थोड़े बहुत दिनों में पार कर लेते हैं, दूसरी कठिनाई अब तक कोई पार नहीं कर पाया। कभी कोई पार कर भी नहीं पाएगा। सत्य को जानना सरल है, सत्य को बताना मुश्किल है। सत्य को जीना सरल है, जीकर ही बताना एक मात्र रास्ता है।

मैं कितना असहाय हूं

है परमात्मा,

मैं कितना असहाय हूं
मैं करने में रस लेता हूं
पर कर नहीं पाता।

लोगों को पता नहीं, कोई कृष्ण आया है !
कितनी देर लगेगी, तुझे समझने को ?
कोई वैज्ञानिक नहीं मिलता,
जिसे कहूं, कि जा सबकी समझ खोल दे।
कोई दानी नहीं मिलता, जिसे कहूं—
तेरे लिए गगनचुम्बी महल बना दे।
कोई धनी नहीं मिलता,
जिसे कहूं—तेरे लिए स्वर्ण सिंहासन बना दे।
कोई आविष्कारक नहीं मिलता,
जिसे कहूं, तेरे लिए पुष्पक विमान बना दे।
कोई पूर्ण स्त्री नहीं मिलती
जिसे कहूं—जा राधा बन जा।
कोई प्रेमी नहीं मिलते,
जिन्हें कहूं—जा गोपी बन जा।
कोई पुरुष नहीं मिलते,
जिन्हें कहूं, जा महापुरुष आये हैं।

हे प्रभु,
कितनी देर है, तुझे फैलने में ?
तू ही फैल जा सारे जगत में।
तू ही नाच सारे जगत में,
अपने पंख फैला कर।
मैं सिर्फ देखूंगा—तेरे प्रेम-नृत्य को।
मैं करने में रस लेता हूं—
पर कर नहीं पाता।

मैं कितना असहाय हूं,
कितना निर्धन हूं,
एक पत्थर हूं।

साधु
अद्वैत भारती
जबलपुर

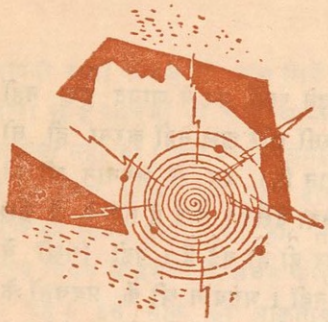

२१ दिवसीय
मौन-प्रयोग :
एक अनुभव

हम भी क्या खाक स्वामी हुए

□ स्वामी योग प्रीतम
भीलवाड़ा (राज०)

मेरा २१ दिवसीय मौन प्रयोग भाई साहब साहब साधु अमृत भारती जी के स्नेहागृह पर ग्राम-कोठारिया (नाथद्वारा राजस्थान के निकट स्थित) में हमारे सद्य निर्मित नव भवन 'रजनीश सदन' में संपन्न हुआ। यह मौन २१ अक्टूबर से १० नवम्बर तक रहा। इस मौन काल में माता जी साध्वी आनन्दमयी ने जिस प्रेम और प्रसन्नता से मेरी सेवा की उसे व्यक्त कर पाना बहुत कठिन है (यह संयोग की ही बात है कि भगवान श्री की पूर्व जन्म की मां को भी भगवान श्री ने मां की दीक्षा में यही नाम दिया है।) वे पुराने मकान से नये मकान तक दिन भर में आठ दस चक्कर तो लगा ही लेती थीं। अंतिम दो सप्ताहों में किसी बहू के घर न होने से वे ही भोजन दूध चाय तैयार कर लातीं। सन्ध्या समय 'गोविंद बोलो जै जै गोपाल बोलो' गाती हुई आतीं और मेरे 'ध्यान-कक्ष' में भगवान श्री रजनीश की तस्वीरों के आगे घी का दीपक एवं अगर-बत्तीयां जला जातीं, कुछ समय तक कीर्तन की उक्त पंक्तियों को अपनी अन्तर्लय से गातीं और फिर चली जातीं। पता नहीं किस अज्ञात खुशी से वे इतनी भाव विभोर रहतीं-उनका मन नाचता ही रहता। दीपक जलाने के बाद अक्सर वे माउण्ट आबू में देखी छबी को दोहरातीं और कहतीं—'हे रजनीश भगवान, थूं पार लगाव जेरे नाथ !' वह अपनी इसी भाषा में अपने अवगुणों का बखान करतीं और हम जैसे ध्यान-

प्रयोग करते हैं वैसा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करती। मैं भगवान श्री की ओर देखकर सिफारिश के भाव से मन ही मन कहता—प्रभु, इनकी सच्चे हृदय से निकली इस प्रार्थना को तुम जरूर सुनना। कितनी प्रसन्नता से ये मेरी सेवा कर रही हैं जैसे भगवान की ही सेवा कर रही हों, पार लगने में पहले मेरा नम्बर हो तो मेरे, बजाय पहले इनका नम्बर ले लेना, मुझे कुछ जल्दी भी नहीं है। उनके कक्ष से चले जाने के बाद मैं कई बार गद्‌गद् हो अश्रुओं से भीगता रहा हूं।

एक दिन मैंने विचार किया—ये ६५ वर्षीया वृद्धा मां दिन भर में कितना थक जाती होंगी, कोई हाथ पैर दबाने वाला भी नहीं है और मैंने उनके पैर दबाने शुरू कर दिये। हाथ पैर दबने से वह खुश होकर कहने लगीं—'छोड़ बापू, आंपी तो ध्यान करां।' मैं भी उनके साथ ध्यान की मुद्रा में बैठ जाता। अब तो मैं तरकीब जान गया था। रोज दोपहर में मैं उनके हाथ पैर दाब देता और वे घन्टे भर तक मेरे ध्यान में बैठकर चली जातीं। कुछ दिनों बाद से वे भोजन कार्य से जल्दी निवृत हो रात्रि को भी ध्यान के लिए आने लगीं। पता नहीं वे ध्यान में क्या करती थीं मेरे ध्यान में तो विचारों के घोड़े ही दौड़ते रहते, पर वे शायद कुछ नहीं करतीं और कुछ नहीं करना ही तो ध्यान है। जब से भगवान श्री को रचना देखकर आई हैं तब से वे कुछ और ही हो गई हैं। पढ़ी लिखी वे हैं नहीं। भगवान श्री के प्रवचनों के गूढ़ अभिप्रायों को भी कहां समझ पाई होंगी; पर मैं कहता हूं जितना वे भगवान् श्री को उस एक शिविर मात्र में समझ गईं उतना वे बौद्धिक लोग कई शिविरों में भी क्या समझ पाते होंगे। वे शिविर काल में रोज सबसे आगे बैठकर बोलते हुए भगवान श्री को एकटक निहारती रहती थीं। वे मुझे कहतीं—'बापू, रजनीश जी नी बोले, वणा में कोई और बोले।' मैं स्वीकृति में सिर हिला देता। मैं मन ही मन भगवान् श्री को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने मां को संन्यास देकर मेरे लिए और मेरे परिवार के लिए एक अच्छी सी पृष्ठभूमि बनादी।

मौन-प्रयोग-काल में मैं सुबह और सन्ध्या के समय कभी कमरे में बन्द होकर नहीं रह सका। मेरा गांव पर्वत की तलहटी में लम्बाकार बसा हुआ है जिसके ठीक नीचे नदी बहती है—बनास नदी। इस पर्वतीय प्रदेश की ऊषा और सूर्योदय का सौन्दर्य ही कुछ और होता। स्वर्णिम सन्ध्याओं के बहुवर्णी रंगों में भी मैं देर तक डूबा रहता—आत्म-विमोहित सा।

चांदनी रातों के मजे भी खूब लिये। तारों छाई रात्रियां भी कम आनन्द दायिनी नहीं थीं। शायद मौन-प्रयोग में हर समय आंखों पर पट्टी बांधे रहने का नियम होता है पर हम तो नित्य नियम से इसका उल्लंघन करते ही रहे। इस गांव की प्राकृतिक शोभा ही निराली है, फिर ऊपर से प्रकृति का स्नेहिल आमन्त्रण, तब भला यह योगप्रीतम कमरे में कैसे बन्द रह सकता था। प्रकृति का ऐसा जीवन्त साक्षात्कार पहले कभी नहीं हुआ, जैसे उसके वे दृश्य मुझ में समाते गये और मैं उनमें।

इन दिनों भोजन करने का एक नया अनुभव खयाल में आया। पूना के जुलाई वाले शिविर में देखी 'बाम्बे टू पूना' वाली रील में इसी आश्रम के नये आवास के बाहर लान में भगवान श्री को नाश्ता करते हुए मैंने बड़े गौर से देखा था। वे कौर को मुंह में रख कर अत्यन्त शान्त भाव से आहिस्ता आहिस्ता चबा रहे थे। मुझे इस मौन काल में न किसी तरह की भाग-दौड़ थी न आगे-पीछे की चिन्ता अतः मैंने भी भोजन के साथ यह प्रयोग किया। मैं ग्रास (कौर) को खूब धीरे-धीरे चबाता, देर तक चबाता और उसके आस्वाद को ठीक से अनुभव करता। तब मुझे पहली बार लगा कि हम भोजन करते हुए अपने को देख भी सकते है। सच में होश पूर्वक किये गये भोजन का आनन्द ही कुछ और है। मुझे लगा कि अन्य कार्य भी ऐसे ही होशपूर्वक किये जा सकते हैं।

ये तो हुई कुछ बाहरी बातें। जहां तक आन्तरिक स्थिति का प्रश्न है उस दृष्टि से भी कुछ कहा जा सकता है। मैं प्रारम्भ के कुछ दिनों तक सुबह सक्रिय ध्यान प्रयोग करता रहा था, पर कभी ध्यान नहीं लग पाया, फिर यह प्रयोग बन्द कर दिया दिन में भी कई घन्टे (कई किश्तों में) ध्यान में बैठता, पर विचारों का प्रवाह पहले से भी कहीं अधिक तीव्र हो जाता। आयोजित ध्यान में ध्यान जम ही नहीं पाता था। रात्रियां दिन की अपेक्षा अधिक शान्त होती थीं अतः मैं जल्दी सोकर रात्रि में प्रायः २-३ बजे उठ जाता। झिंगुर की ध्वनि या हृदय की धड़कन में किसी संगीत की तुक-ताल बिठाता हुआ मैं ध्यानस्थ होने का उपक्रम करता पर संगीत से अधिक गहरी डूबकी नहीं लग सकी—किसी अतल मौन में। प्रथम चार-पांच दिन तक दिन में विचार और रात्रि नींद में स्वप्न बहुत आक्रांत करते रहे। लगा कि २१ दिनों तक यही हाल रहा तो कहीं दिमाग की नसें ही नहीं फट जायें। बीच-बीच में राहत पाने के लिये मन ही मन भगवान श्री का स्मरण एवं

कीर्तन की विविध धुनें दोहरा लेता प्रभु कृपा से यह भयंकर घाटी भी पार हो गई। जब दुनिया भर की बातें घटनाएं खयाल में आ गईं, उन में से गुजर कर फिर ठीक से उत्तेजित आविष्ट भी हो लिया तब पता चला कि कौन कौन से आवेग मुझमें अब भी मौजूद है, कौन कौन से आवेग मुझमें अब भी मौजूद हैं, कौन कौन सी वृत्तियां मन को जकड़े हुए हैं। और तब मैंने अपने को बहुत कमजोर व्यक्ति के रूप में पाया। ये सब गड़-बड़ें मुझमें चल रही हैं और मैं सन्यासी हूं नहीं, सन्यासी होना मेरी सम्भावना हो सकती है पर अभी यह मेरा सत्य नहीं है। धन्यवाद प्रभु को कि मुझे अपनी ही कमजोरी से अपने ही कारागृह से परिचित करवा दिया जिसमें मैं बुरी तरह बन्द हूं।

बाद में कई दिन बहुत अच्छे बीते। तब जिन्दगी को खूब तसल्ली से जिया, जीने का आनन्द लिया। लगा कि मौन प्रयोग में तो मजे ही मजे हैं, मौन प्रयोग करने वाले फिजूल ही कहते हैं कि २१ दिन बड़ी कठिनाई से बीतते हैं। क्षीण विचार प्रवाह भी रहता था पर जुलाई के शिविर में भगवान् श्री ने एक प्रवचन में कहा था कि जब भी खयाल आ जाये, तुरन्त होश में कूद जाओ 'जम्प' न पछताना है न चिन्ता करना है, तो हम बिना किसी चिन्ता या पश्चाताप के 'जम्प' लेते रहते कोई तनाव नहीं था। पर यह स्थिति अन्त तक नहीं थी। पर यह स्थिति अन्त तक नहीं बनी रही। अन्तिम कुछ दिनों में हम फिर विचार-चक्र में बुरी तरह उलझ गये। आये थे कुछ दिनों प्रभु सान्निध्य में रहने के लिए और कैसी व्यर्थ की ऊहापोह में फंस गये, हम भी क्या खाक स्वामी हुए?

बहुत ही अद्भुत है यह मौन प्रयोग। साधक को स्वयं की वस्तु स्थिति जानने एवं साधना पथ की बाधाओं के सम्यक बोध की दृष्टि से यह प्रयोग बहुत उपयोगी है। सहज घटित ध्यानावस्था में कितने ही रहस्य उद्घाटित होते चलते हैं। वह अनुभव की नई ही दुनिया होती है। इस सम्बन्ध में अधिक कुछ कहना उपयोगी नहीं होगा क्योंकि उससे अनुभूति सघन होने की अपेक्षा बिखरती है। कोई स्वयं मौन में प्रवेश करके ही उसे जाने तो अच्छा है।

मैं यह मानता हूं कि मेरी ही पूरी तैयारी नहीं थी अन्यथा पूरी तरह डुबा देने के लिये यह एक प्रयोग ही काफी है। अन्तिम दिन तो अपने अन्तर में मैं स्पष्ट रूप से यह प्रभु वाणी सुन रहा था—इतनी जल्दी भी क्या है? एक बार फिर

संसार के कुछ मार्गों से तुम पूरी तरह छक कर किन्तु होशपूर्वक गुजर जाओ, मैं ही तुम्हें कभी अचानक अपने आलिंगन में भर लूंगा। और मैं कह रहा हूं—मुझे जल्दी भी कहां है? तेरी रची हुई यह सृष्टि भी क्या कम आनन्दप्रद है, मैं ऐसे ही मुग्ध हूं, विमोहित हूं। क्यों न तेरी सृष्टि में जीने का भी पूरा आनन्द ले लूं। यह तो हम किसी के सिखाये में आकर यहां चले आये थे वरना इस लायक हम हैं भी नहीं। अभी तेरी सृष्टि ही बहुत है। इसे ही देख देख-कर तेरे मधुर स्मरण में निरन्तर डूबा रहूं, तेरे अनुराग में रमा रहूं तो भी जीवन की कम सार्थकता नहीं है।

●

मनन जीवनोपयोगी (आध्यात्मिक हिन्दी मासिक) मनन

वार्षिक मूल्य ६ रु. ☐ द्विवार्षिक मूल्य ११ रु. ☐ त्रिवार्षिक मूल्य १६ रु.

दुरंगे ४८ पृष्ठ

मनन का प्रत्येक अंक :

★ संत विचारकों व विद्वानों की वैज्ञानिक ढंग से लिखी आध्यात्मिक रचनाओं को प्रकाशित करता है। ★ वेदान्त और धर्म की गहन गुत्थियों को सुलझाने की सीधी और साफ विधियों को उजागर करता है। ★ मानव को उसकी दिव्य सत्ता की ओर उन्मुख करने वाला क्रांतिदूत। ★ पारिवारिक तथा खेल-कूद, ज्ञान-विज्ञान का अनूठा समन्वय।

● पांच ग्राहक एक साथ बनाकर भेजने वाले को मनन के १२ अंक मुफ्त।

सम्पर्क करें : तुलसी मानस प्रकाशन,

गुप्ता मिलस इस्टेट, रे रोड, बम्बई ४०० ०१० फोन : ३९१८३१

संकल्प

मौजूद है परमात्मा हमारे सामने—
चलता-फिरता, उठता-बैठता—एक चैतन्य पिण्ड
पर हम उसे कहां देख पा रहे हैं ?
हम उसे देख कर भी नहीं देख पाते हैं
क्योंकि हम स्वयं को ही नहीं देख पाते हैं
हमारी आत्यन्तिक सम्भावना के दर्शन में ही
सम्भव है उसका दर्शन,
पर शरीर के मन के तल पर ही अटकी हुई है हमारी दृष्टि
और न वह शरीर है न मन।

वह बोल रहा है निरन्तर—युगों से—
अन्तर्गर्भित शान्ति के गहन शून्य पर
क्रान्ति के वात्याचक्र—तूफान उठाता हुआ
पर हम उसे कहां सुन पा रहे हैं ?
हम उसे सुनकर भी नहीं सुन पाते हैं
क्योंकि हम स्वयं को ही नहीं सुन पाते हैं
एक अन्तर्व्याप्त गहन मौन में ही
सम्भव है उसका श्रवण
पर शब्द और अर्थ पर ही केन्द्रित हैं हमारे कर्ण
और न वह शब्द है न अर्थ।

जिसे पुकारते रहे हैं हम युगों से
पूजा में, प्रार्थना में, जप-अनुष्ठान में
वह उपस्थित है—जीवन्त-ज्वलन्त
पर हम उसे कहां अनुभव कर पाते हैं
हम उसके साथ बातें कर लेते हैं, हंस लेते हैं
उसके संग रह लेते हैं
पर उसे बिल्कुल चूक जाते हैं
क्योंकि वह वहां नहीं है
करुणा-प्रेरित वह अनन्त की सीढ़ियां उतर कर
बहुत नीचे चले आये हैं—हमारे तल तक—नर्क में
ताकि हमसे संवाद निर्मित हो सके
और हमें स्वर्ग की दिशा में एक-एक सीढ़ी चढ़ा सके
पर नर्क के प्रति हमारा मोह बहुत गहरा है
और हम सन्तुष्ट हैं कि प्रभु यहां उपस्थित है
ऐसे हम न जाने कितनी बार
अनेक बुद्धों—परम पुरुषों के साथ रह कर
तृप्त हो चुके हैं
और जब वे बुद्ध तिरोहित हुए
तब फिर हम पूजा, प्रार्थना, जप, अनुष्ठान में दत्तचित्त हो गये हैं।

कब टूटेगी हमारी यह मोह निद्रा
कब टूटेगा हमारा यह भ्रम ?
क्यों न हम संकल्प करें—
इस बार हम प्रभु का यह आगमन व्यर्थ नहीं होने देंगे,
माना कि हम बहुत अज्ञान में हैं
पर प्रभु जब खुद हम तक चल कर आया है
तो स्वर्ग की यात्रा पर
हम भी उसके संग-संग हो लेंगे।

□ *स्वामी योग प्रीतम*
भीलवाड़ा (राज)

तुम न आते तो.....?

□ डा. उर्मिला
जबलपुर

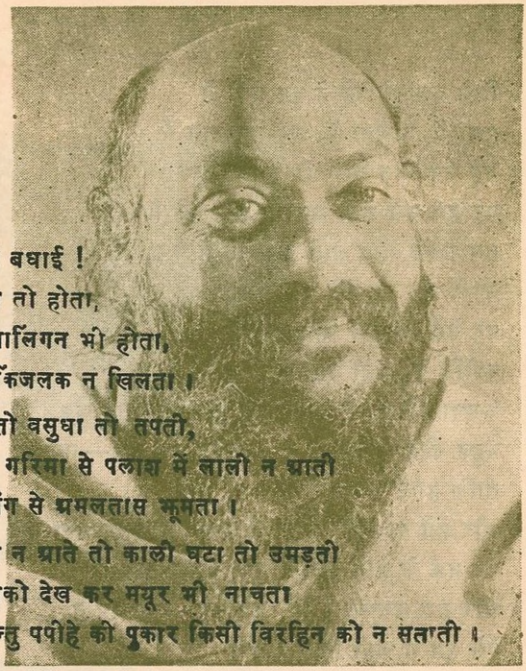

तुम्हारे जन्म की हमको बधाई !
तुम न आते तो सूर्योदय तो होता,
रश्मि और पंकज का आलिंगन भी होता,
किन्तु उनकी पुलक से किंजलक न खिलता ।

तुम न आते तो वसुधा तो तपती,
किन्तु उसकी गरिमा से पलाश में लाली न आती
न उसकी उमंग से अमलतास झूमता ।

तुम न आते तो काली घटा तो उमड़ती
उसको देख कर मयूर भी नाचता
किन्तु पपीहे की पुकार किसी विरहिन को न सताती ।

तुम न आते तो शरद ऋतु तो आती,
सरोवर में कुमुदिनी का शृङ्गार भी होता,
किन्तु किसी की प्रतीक्षा की धड़कन
आकाशगंगा में न समाती ।

तुम न आते तो शिशिर तो आता
पादपों से पत्रों का बिछोह तो होता,
किन्तु उसकी शीतलता प्रेमाग्नि को प्रज्ज्वलित न करती ।

तुम न आते तो वसन्त तो आता
सृजन का आनन्द प्रकृति में समाता,
सुमन तो खिलते किन्तु पराग न होता ।

तुम न आते तो हिमालय तो होता
किन्तु हिम को द्रवित कर बहने वाली
तुम्हारी करुणा की गंगा न होती ।
तुम्हारे जन्म की हमको बधाई !

भगवान श्री और मैं

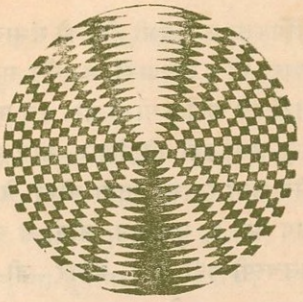

□ एम. जी. वरवारिया
अहमदाबाद

मेरे पिता परम "आस्तिक" रहे हैं, इसलिये मैं बचपन से ही 'नास्तिक' हो गया हूं। एक बात तो मेरे मन में पक्की बैठ गई थी कि संप्रदाय में धर्म नही है। हालांकि धर्म क्या है वह मुझे पता नहीं था लेकिन शायद असली धर्म की खोज की प्यास हृदय के किसी कोने में छिपी हुई थी। फिर भी गहरी नास्तिकता के कारण धर्म के साथ जुड़ी हुई। सभी चीजें— मंदिर, महंत, पूजा, प्रसाद इत्यादि से मुझे बड़ी नफरत थी। ऐसी नफरत से भरी मनः स्थिति में आचार्य रजनीश की पहचान होने की संभावना बिलकुल नहीं थी, क्योंकि शहर में बहुत महात्माओं, स्वामी, आचार्य, प्रवचन के लिये आते थे लेकिन मेरा उनसे कोई लेना देना नहीं था। बल्कि जो लोग उन्हें सुनने के लिये जाते थे उनके प्रति मुझे बहुत तरस आता था कि ये लोग अपना समय क्यों फिजूल बरबाद कर रहे हैं।

तब मैं राजकोट में था। शायद १९६७ का साल था। सुबह-शाम प्रवचनों का आचार्य श्री का चार दिनों का राजकोट में प्रोग्राम था। शहर में आचार्य श्री के प्रवचनों की बातें चल रही थीं। उनकी क्रांतिकारी मौलिक बातों से लोग प्रभावित होते जा रहे थे। मैं उन मूढ़ लोगों की ना समझी पर मन ही मन हंस रहा था। बातों से बात चली तो कुछ लोगों ने मुझे भी एक बार आचार्य श्री का प्रवचन सुनने को कहा। मैंने तीखे और उपेक्षा भरे स्वरों में बात टाल दी क्योंकि मुझे पता था कि ऐसे आचार्यों—महंतों की भारत में कोई कमी नहीं थी। रोज कोई न कोई तथाकथित साधु या साध्वी गीता पर, सांख्य पर या बहुत से आध्यात्मिक विषयों पर प्रवचन देने आते थे। उन लोगों की

धार्मिकता कम, दंभी होने की संभावना ज्यादा थी। अखबारों में वैसे समाचारों की कोई कमी न थी कि फलां साधु फलां स्त्री को लेकर भाग गया और फलां स्वामी इतना सोना लेकर भाग गया। मुझे इन लोगों से कोई दिलचस्पी नहीं थी। डोंगरे जी का भागवत सुनने दस हजार से ज्यादा लोग एकत्रित हो जाते थे और ऐसे ही आग्रह से कुतूहल-वशात् मैं भी एक दफा वहां जा आया था लेकिन वहां से भी मैं विभ्रम होकर ही लौटा था। लोगों की भीड़ होने से क्या मतलब ? हिंदुस्तान की आबादी इतनी ज्यादा है कि थोड़ी-बहुत होशियारी हो तो पांच सौ-हजार सुनने वाले मिल ही जायेंगे। कोई कठिन बात नहीं है। इसलिये आचार्य रजनीश के प्रवचन में जाने का भी मुझे कोई मन न हुआ और विवाद होने पर भी वहां जाने से मैंने साफ इंकार कर दिया।

लेकिन दूसरे दिन स्थानीय अखबार में इन प्रवचनों की सुरखी दिखाई दी जिसमें आचार्य श्री ने वर्तमान संप्रदाय, धर्मगुरु, देवस्थान और झूठे परमात्मा तक की विडंबना की थी। पढ़के मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, यह तो जैसे बचपन के मेरे ही विचारों की अभिव्यक्ति हुई। ऐसा लगा कि यह धार्मिक प्रवचन न था, अधार्मिक प्रवचन था। और अधार्मिक बातों से किस नास्तिक की दिलचस्पी न जगेगी? उसी सांझ मैं प्रवचन सुनने चला गया।

और उसी सांझ क्या चमत्कार हो गया ? उस दिन से आज तक आचार्य श्री का प्रवचन सुनने का जो भी मौका मुझे मिला, मैंने कभी खोया नहीं। यह कौन सा जादू हो गया ? इस मोहपाश में मैं जैसे बंध गया ? क्या मैं हिप्नोटाइज हो गया या मुझ पर तांत्रिक विद्या चलाई गई ? सुबह जल्दी उठने का मैं बड़ा आलस रहा हूं। रात भर जागने में मुझे कोई दिक्कत नहीं लेकिन सुबह की नींद जैसी कुछ भी प्यारी न थी। आचार्य श्री का आठ बजे का प्रवचन सुनने के लिये मुझे ७ बजे उठना पड़ता था। मैं बड़ी उत्सुकता से और बड़ी तीव्रता से समय पर उठकर जाने लगता था और समय पर आचार्य श्री के प्रवचन में सुबह शाम पहुंचता था। जैसे अगर लेट होने से चूक गया तो चूक ही गया। आचार्य श्री के प्रवचन सुनने की मुझ पर एक धुन सवार हो गई।

फिर तो प्रवचन के बाद उसकी चर्चायें होती रहीं। मित्रों में समुदाय में आचार्य श्री के प्रवचन की और

ज्यादातर उनकी बोध कथाओं की बातें होती रहीं। पत्रों में भी उस पर जिक्र होने लगा। आचार्य श्री का साहित्य छोटी छोटी पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशित होने लगा। मैंने सारी पुस्तिकाओं का सेट खरीद लिया। फिर तो "ज्योति शिखा" पत्रिका भी निकलने लगी। मैं उसका भी ग्राहक हो गया। तबसे आजतक मैंने आचार्य श्री का सारा हिंदी और ओरीजीनल अंग्रेजी साहित्य की एक भी किताब बाकी नहीं छोड़ी। पहले तो कम कीमत की छोटी-छोटी पुस्तिकायें थीं लेकिन बाद में ज्यादा कीमती ग्रंथ प्रकाशित होने लगे। फिर भी यह मेरा सौभाग्य है कि अब तक प्रकाशित हुआ करीब करीब सभी पुस्तकों की अपनी लायब्रेरी मेरे पास है। आचार्य श्री के साहित्य से इतना लगाव हो गया कि फिर तो उसके सिवाय शायद दूसरा कुछ पढ़ने को ही न रहा। फिर धीरे धीरे अपने रेकार्डर में आचार्य श्री का प्रवचन भी टेप करने लगा और उन्हें मित्रों में, या रोटरी या लायन्स जैसी क्लबों में सुनाने भी लगा। बाद में टेप प्रवचन का संकलन भी करने लगा और उन्हें प्रकाशन हेतु 'युक्रांद' में भेजने लगा। आचार्य श्री की "देश के जलते प्रश्न" पर अहमदाबाद में हुई एक पूरी प्रवचनमाला संकलित कर दी जो आचार्य श्री ने उन्हीं के हाथों से पुस्तिका के रूप में प्रकाशनार्थ भिजवा दी। आचार्य श्री के साहित्य से मेरा इतना लगाव हो गया कि आचार्य श्री का साहित्य पढ़ना-पढ़ाना और उनके प्रवचनों की टेप सुनना-सुनाना मेरे जीवन का एक अंग हो गया।

प्रकृति वैयक्तित होने के कारण आचार्य श्री के आमने-सामने मैं बहुत देरी से आया। तब मेरा ट्रांसफर अहमदाबाद हो चुका था। आचार्य श्री के ठहरने का स्थान ढूंढ़कर मैं वहां जाता था और जो मुलाकातें होती थीं वे सुनता था। मुझे तो आचार्य श्री से पूछने के लिए कोई प्रश्न नहीं उठता था, अतः जो लोग उन्हें प्रश्न पूछते थे, उनके अप्रतिम उत्तर सुनने का अद्‌भुत रस लेता रहता। यह एक आश्चर्य था कि आचार्य श्री के लिए मेरे मन में कोई प्रश्न कभी नहीं उठा। इसलिए अभी तक मैंने उन्हें कभी कोई पत्र नहीं लिखा। प्रश्नों का मेरे लिए कोई मूल्य न था। उत्तर असली मूल्यवान थे।

आचार्य श्री का स्थाई प्रशंसक रहना जरा भी सुलभ नहीं है। बहुत कम ही ऐसे हिम्मतवर लोग हैं जो उनकी बातों को पचा सकते हैं। ज्यादातर लोग तो उड़ा देते हैं क्योंकि उनकी बातें लोहे के चने जैसी हैं।

हर छः आठ महीनों के अरसे में आचार्य श्री एक बंब फेंकते हैं जिससे खलबली हो जाती है। इस बंब के कारण कई मित्र उनके दुश्मन हो जाते हैं। लेकिन थोड़े हिम्मतवर मित्र और पक्के मित्र हो जाते हैं। ऐसे एक-एक बंब करके आचार्य श्री ने अब तक कई बंब फेंके हैं। सबसे पहले आचार्य श्री एक आधुनिक धार्मिक पुरुष दिखाई देने लगे। उन्होंने सांप्रदायिक धर्म की आलोचना का पहला बंब फेंका कई धर्म के ठेकेदार उनके दुश्मन हो गये। शुरू शुरू में जब भी आचार्य श्री धर्म के खिलाफ बोलते थे तो वे मंदिर-मस्जिद चर्च और हिंदू पंडित, मुस्लिम मौलवी क्रिश्चियन पादरी इत्यादि सभी धर्म और धर्म गुरुओं के खिलाफ इतनी तीव्र मार्मिक वाणी में बोलते थे कि मुझे तो डर लगता था कि कोई 'धार्मिक' आदमी उनकी हत्या न कर दे। इसके बाद थोड़े ही दिनों में प्रेम और काम (सेक्स) के बारे में चर्चा छेड़ दी और दूसरा बंब फेंका। स्त्री पुरुष का संभोग भी समाधि का ही एक प्रकार है इस विधान पर तो भारी हलचल मच गई। इसके शोर अभी हवा में गूंज रहे थे कि उन्होंने गांधी–शताब्दि वर्ष मे गांधी जी के खिलाफ बोलना शुरू करके और एक बंब फेंका। इससे परिणाम यह हुआ कि आचार्य श्री से जितने गांधीवादियों से निकटतम संबंध थे वे सब टूट कर रह गये। अभी यह शांत न हुआ कि समाजवाद के खिलाफ बोल के लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। शुरू शुरू में जो लोग उन्हें साम्यवादी या रशिया का एजेन्ट या तो उनका जासूस कहते थे उनके लिये इस बहुरूपी आदमी ने समाजवाद के खिलाफ बोल के बड़ी दिक्कतें खड़ी कर दीं। और वह भी इस समय पर कि जब सारे देश में समाजवाद का नारा बड़े जोरों से चल रहा था। उसके बाद थोड़े दिनों में आचार्य श्री ने 'सन्यास' का चक्कर चलाया एक एक बंब असहनीय था। एक एक बंब पर लोगों में, अखबारों में इतनी चर्चा चलती थी, जिसका कोई हिसाब न था। किस किस को जवाब दें; अब यह सन्यास की बात शांत न हुई कि खुद ही "भगवान" बन बैठे। उसके साथ 'प्रभु चिकित्सा' की बात आई। 'रजनीश की जय' का नारा होने लगा, रजनीश की छबियां बिकने लगी, रजनीश जी की आरती उतरने लगीं, रजनीश जी के चरण स्पर्श भी होने लगे, यहां तक कि रजनीश के नाम पर प्रसाद भी बंटने लगा। न मालूम अभी तो कितने बंब उनसे गिरने वाले हैं। उनकी झोली न मालुम कितने प्रकार के और कितने

बंबों से भरी हुई है। एक एक बंब लोगों के लिये कसौटी बनकर खो जाता है। एक बंब से कई मित्र कट्टर दुश्मन हो गये हैं। "ज्योति शिखा" के अंकों में उसके संचालकों की नामावलि देखें। पहले अंकों में जो नाम थे, थोड़े अंकों के बाद दूसरे नाम आ जाते और फिर थोड़े अंकों के बाद और नई नामावलि आ जाती आचार्य श्री के साहित्य के फैलाव के लिये जो भी पत्रिका निकाली गई, सभी का शुरू शुरू में तो यही हाल हुआ। प्रशंसकों का विरोधी हो जाना एक सिलसिला ही जैसे हो गया।

लेकिन मैं इस जाल में नहीं फंसने वाला था। आचार्य श्री की यह बात मुझे साफ साफ दिखाई देती थी कि वे भीड़ को छांटना चाहते हैं। इस चाल में जो जो आ गये वे सब उनसे छूट गये। उन्हें भीड़ की नहीं बहुत थोड़े सत्य के पिपासुओं की जरूरत थी। इसलिये वे शुरू से ही रिट्रेन्चमेंट चाहते थे, और थोड़े थोड़े समय में असहनीय बंब फेंककर वे, हजारों की रीट्रेन्चमेंट-छटनी कर लेते थे। और वे लोगों को छांटते थे भी इस प्रकार कि उनको पता न चलता कि उन्हें आचार्य श्री ने छोड़ा। सबको लगता कि उन्होंने ही आचार्य श्री को छोड़ा। मैं इस जाल में नहीं फंसा इसका रहस्य भी आचार्य श्री का प्रवचन ही है। उन्होंने १९६८ में राजकोट जीवन जागृति केन्द्र के मित्रों के समक्ष एक प्रवचन में जो बात कही थी वह मेरे अंतर में गहरी बैठ गई थी। वह आवाज जो आज भी मेरे प्राणों में गूंज रही है वह इस प्रकार थी—

"जीवन जागृति केन्द्र भी मित्रों का एक केन्द्र है, अनुयाईओं का नहीं, इसमें वे लोग हो सकते हैं जो मुझसे अनेक बातों में सहमत नहीं हैं। जिस बात में वे सहमत नहीं, वे उसको नहीं पहुंचायेंगे। जिसमें सहमत हैं उसको पहुंचायेंगे। यह बहुत साफ होना चाहिए। ताकि हम उसमें परेशानी में नहीं पड़ते। अन्यथा हम परेशानी में पड़ते हैं। और चित्त को तकलीफ होती है और दुख होता है। हम एक भाव बना लेते है, फिर उस भाव के हिसाब से मेरे प्रति आपकी चेष्टा रहती है कि मैं वैसा करूं जैसा आपने भाव बना लिया मेरा कोई विश्वास नहीं। मेरा कोई भरोसा नहीं। मैं कल क्या करूं उसका कोई पक्का नहीं इसलिये मेरे बाबत कोई धारणा बनाना ही नहीं भूल के भी। क्योंकि धारणा बनाने से फिर कष्ट होता है। आपने एक धारणा बना ली और कल मैंने कोई बात की जो उस धारणा के प्रतिकूल पड़ गई तो अड़चन आती है। धारणा बना ली इसलिए अड़चन आती

है। जिंदगी बहुत बड़ी है और जिंदगी के सारे पहलुओं पर मुझे कुछ न कुछ आज नहीं, कल कहना है। कौन कितने दूर तक चल सकेगा ? वह बहुत मुश्किल है, उसकी फिक्र ही मत करें। जितने दूर आप मेरे साथ चल सकते हैं, उतने दूर तक हमारा साथ है। उसके आगे मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है।

"बस मुझसे आपका संबंध एक रास्ते पर चलते हुए मित्रों का है। कितना दूर तक आप चलते हैं फिर आपका ठहराव आ जाता है, आप रूक जाते हैं, नमस्कार हो जाते हैं। मैं आगे बढ़ जाता हूं। इतना ही स्पष्ट रहे तो ही हम ठीक ढंग से काम में चल सकेंगे। जो जितनी दूर चल सकेगा, चलेगा। उसके लिये उसका धन्यवाद है। उसके आगे नहीं जा सकता है, उसकी बेचैनी है, उसकी परेशानी है। मेरी भी परेशानी है। मैं वहां रूक नहीं सकता हूं। यह सारी गड़बड़ पैदा होती है वह इस-लिए कि जो दूर तक मेरे साथ चला कुछ दिन तक, अगर उसने श्रद्धा का भाव मेरे प्रति बना लिया तो श्रद्धा का भाव बड़ा खतरनाक है। बहुत महंगा सौदा है। सौदा इसलिए मंहगा है कि मेरे प्रति श्रद्धा बनाली और कल मैंने कुछ ऐसा काम किया या कुछ ऐसी बात की कि आपकी श्रद्धा टूट गई तो जैसे ही श्रद्धा टूटती है, तो आदमी ठीक उलटे पेन्डुलम पर पहुंच जाता है। श्रद्धा टूटी तो अश्रद्धा पर आता है। बीच में नहीं रुक सकता फिर। मित्रता टूटती तो दुश्मनी आती है। बीच में नहीं रूकता कोई आपकी श्रद्धा कभी भी टूट सकती है। तो जो कल मेरे साथ था, वह कल मेरा दुश्मन हो सकता है। और फिर जब वह दुश्मन हो जायेगा तो जिस भांति वह मेरी सारी बातों के लिये कल तक कहता था, ठीक है, उसी तरह कहेगा यह सारी बातें गलत हैं। वह मंहगा पड़ता है। वह मुझे रोज अनुभव होता है।

इस प्रवचन का एक एक शब्द मेरे भीतर गहरा उतर गया है, इसलिये कितनी ही ना पसंद बातें आईं, मैंने उन्हें अलग कर दीं। जितनी बातें पसंद थीं, उतनी साथ ले लीं। अगर यह प्रवचन मैंने न सुना होता तो शायद मेरी भी अब तक छटनी हो गयी होती।

मेरे एक मित्र हैं। वे मानते हैं कि आचार्य श्री की बातें गड़बड़ें पैदा करती हैं और मन को उलझन में डाल देती हैं। स्थायी विचारों को अस्थिर बना देती हैं और दिमाग डावांडोल कर देती हैं। मानते हैं कि उनकी बातों से कोई सुलझाव नहीं

मिलता। इसलिये उन्हें नहीं सुनना चाहिये। मेरे एक दूसरे मित्र हैं। हम दोनों आचार्य श्री से बहुत प्रभावित हुए थे, इसलिए हम दोनों में उनकी चर्चायें काफी होती रहती थीं। वे आचार्य श्री के साथ बहुत दूर तक चल चुके थे। मुझे लगता था, वे जम्पींग बोर्ड पर ही खड़े थे और आज या कल छलांग लगाने ही वाले थे। लेकिन वे भी एक दिन कहने लगे कि यह सब "वाणी-विलास" है। शायद उन्होंने आचार्य श्री के प्रति श्रद्धा का भाव बना लिया था। मैं पहले तो दंग रह गया लेकिन उनके प्रति मुझे कोई गुस्सा न आया। कई लोग आचार्य श्री को "बोगस" और उनकी वाणी को "बकवास" कहते हैं, लेकिन उससे मेरे मन में कोई प्रत्याघात नहीं होता। एक ग्रेजुएट संन्यासिनी जी—जो एक बंबई में एक कंपनी में नौकरी करती है—उनने आचार्य श्री से प्रश्न किया था कि मेरे यह गेरुए लिबास और माला देखकर आफिस में सब लोग हंसे तो मैं क्या करूं ? तो आचार्य श्री ने जवाब दिया कि तब तुम भी हंसना ! आचार्य श्री के बाबत अगर कोई भला बुरा कहता है तो मैं भी यही नुस्खा इस्तेमाल करता हूं। मैं भी उसके सामने हंसता हूं। रजनीश जी को गाली देने वाले के सामने हंसने में बड़ी मौज आती है।

धीरे-धीरे कुछ लोग रजनीश जी से छूटने लगे हैं, लेकिन मैं छूट नहीं पाता, यह मेरी निजी कथा है। अगर एक दफा भी मैं उन्हें सुनने में न जाता तो मुझे जो जीवन के बिखरावों के बीच एक शाश्वत् शांति बोध हुआ है—वह न होता। और मेरी भी वही दशा होती जो औरों की हुई है।

ऐसे शाश्वत् शांति बोधि के प्रणेता भगवान श्री को चरणों में शत् शत् वंदन जिनके आशीर्वाद से मुझे सारे तनावों के बीच एक मुक्ति बोध हुआ है और भगवान श्री के तथा मेरे बीच एक अनन्त आनंद का भाव उदित हुआ है।

आल्हाद

मैं देख रहा हूं
कि देश के कोने-कोने में
फूंक दी गई है एक शक्ति...एक ऊर्जा
एक ज्योति...
और यह मरता हुआ समाज
एक बार फिर करवट बदल रहा है,
मैं इतना आह्लादित हूं कि
उसका वर्णन नहीं होता...,
आह मेरे देश !
आह मेरे रजनीश !!

स्वामी अगेह भारती, जबलपुर

प्रार्थना

हे प्रभो !
तू मेरे पुण्यों और पापों को
अपनी तेज अग्नि से जला दे
मेरे अच्छे-बुरे कर्मों को भस्म कर दे
ताकि मैं निपट अकेला रह जाऊं
और तुझे स्वीकार हो सकूं।

त्राटक ध्यान

△

पूज्य भगवान श्री की प्रवचन शृङ्खला 'नहीं राम बिन ठांव' से प्रवचन क्रमांक ७वां, दिनांक ३१-५-७४ को पूना में दिए गए प्रवचन का एक अंश : त्राटक ध्यान पर ।

▽

□ संकलन : *मा दिव्यगंधा*

परंपरागत जो त्राटक है, त्राटक की परंपरागत जो धारणा है वह तो एकाग्रता की है। और एकाग्रता से शक्ति पैदा होगी, सिद्धियां अर्जित होंगी, लेकिन जो परम विश्रांति की जो खोज है, उस परमात्मा से मिलन नहीं होगा। एकाग्रता अहंकार का ही अंग और विस्तार है, तुम मिटते नहीं, तुम और मजबूत हो जाते हो। तुम पिघलते नहीं तुम और बर्फ की तरह जम जाते हो। तुम्हारी शक्ति तो बढ़ जाती है तुम्हारा आनन्द नहीं लेकिन जिसे मैं त्राटक कह रहा हूं वह एकाग्रता का प्रयोग नहीं है, वह केवल देखने का प्रयोग है 'जस्ट लुकिंग' फर्क को समझ लें। त्राटक का अर्थ होता है किसी एक बिन्दु पर सूर्य पर मूर्ति पर, बिंदु पर, किसी भी चीज पर अपने सारे मन को एकजुट करके लगा देना है। मन को कर लेना है संकीर्ण कि मन यहां वहां न भागे, मन की सब धाराएं एक तरफ मुड़ जाएं, मन बिंदु की तरफ बहता हुआ रह जाये। जरा-सी भी चेतना की किरण यहां वहां न बिखरती हो, बिना बिखरे सब एक बिंदु पर आकर टिक जाये। एक बिंदु पर टिकाने की, मन को बांध बांध कर, पकड़ पकड़ कर एक जगह बिठाने की है। जिसे मैं त्राटक कहता हूं वह सिर्फ नाममात्र को त्राटक है। इस अर्थ में त्राटक कहता हूं कि तुम भीतर खाली हो जाओ, मन को पकड़ पकड़ कर मेरी तरफ लाने की जरूरत नहीं, तुम खाली हो जाओ, सिर्फ मेरी तरफ देखो। इस देखने में तुम भीतर कोई उपाय न करो, इस देखने में तुम खाली शांत हो जाओ और सिर्फ देखो, आंख तुम्हारी अपलक मेरी तरफ हो। आंख के द्वारा तुम्हें मेरी तरफ नहीं आना है आंख के द्वारा मैं तुम तक आऊंगा। आंख तुम्हारा द्वार है। लेकिन अगर भीतर तुम अतिशय भरे हो तो जगह नहीं है, तुम भीतर अगर खाली हो, और तुम्हारा सिंहासन रिक्त है तो तुम्हारी खाली आंखों के द्वार से मैं

प्रवेश कर सकता हूं। परम्परागत त्राटक में साधक अपनी चेतना को बिंदु पर ला रहा था, इस त्राटक में साधक कहीं भी नहीं जा रहा है। सिर्फ अपने भीतर खाली हो रहा है और आंखों को खुली रखें ताकि मैं उसके भीतर आ सकूं। यह बिल्कुल बुनियादी भिन्न है, और यह जो देखने की प्रक्रिया है बड़ी अनूठी है। क्योंकि जब तुम सिर्फ देखते हो, त्राटक करने की चेष्टा भी नहीं करते, क्योंकि उसे करने में भी देखना अशुद्ध हो जायेगा विचारों की तरंगें चित्त में आ जायेंगी, जब तुम सिर्फ देखते हो तो तुम्हारी आंखें आकाश की तरह कोरी हो जाती हैं। जब तुम कुछ देखने की कोशिश नहीं करते, मात्र देखते हो तो तुम भीतर एकदम शांत, तनाव रहित हो जाते हो।

कभी जमीन पर लेट कर आकाश की तरफ सिर्फ देखो, सोचो मत, आकाश में बादल बन रहे हों, उन बादलों में मूर्तियां मत देखो, हाथी घोड़े मत देखो, कुछ सोचो मत, तुम सिर्फ देख रहे हो—तुम्हारी आंखें जैसे आंखें नहीं बल्कि कैमरे का लैंस है—जो कुछ सोच नहीं रहा, सिर्फ देख रहा है, जो भी गुजर रहा है तुम एक दर्पण की भांति लेटे हो। दर्पण से जो भी गुजरेगा दिखाई पड़ेगा, लेकिन दर्पण सोचता नहीं कि बादल काला है कि सफेद है, कि ऐसा होना था या कि नहीं होना था, कि क्यों बादल आ गये हैं। वर्षा होने के करीब है, कुछ मत सोचो, तुम सिर्फ देखते रहो आंखें खुली रखो झपको मत। तुम थोड़ी ही देर में पाओगे कि बाहर का आकाश तुम्हारे भीतर प्रवेश कर गया। जल्दी ही तुम पाओगे कि भीतर का आकाश और बाहर आकाश एक महा आकाश बन गया। उनके बीच की जो छोटी सी पतली दीवार तिरोहित हो गई। और तब तुम पाओगे कौन बाहर कौन भीतर, भीतर कहां है बाहर कहां है। कहां भीतर समाप्त होता है और कहां बाहर शुरू होता। सब सीमाएं खो गई तुम भी आकाश हो। ठीक ऐसा ही प्रयोग है मेरे त्राटक का प्रयोग।

मैं इधर शून्य बैठा हूं, तुम उधर भरे बैठे हो मिलना कैसे हो? मैं यहां बहने को उत्सुक, तुम्हारा पात्र वहां उल्टा रखा है। मैं यहां तत्पर कि सब तरफ से तुममें प्रवेश कर जाऊं, लेकिन तुमने कहीं कोई रंध्र नहीं छोड़ी। तुमने अपनी सब तरफ सीमेंट कांक्रीट की मजबूत दीवाल बना रखी है। तुम तड़पते हो, चिल्लाते हो, तुम्हारी प्यास मुझे सुनाई पड़ती है। तुम्हारी पीड़ा मुझे दिखाई पड़ती है। तुम्हारी खोज ईमानदारी से भरी है, लेकिन तुम अपने ही बनाये गये घेरे

में बंद हो गये हो। और तुम्हारी कठिनाई यह है कि तुमने अपने कारा-गृह को अपना निवास स्थान समझ रखा है और तुमने अपनी जंजीरों को आभूषण मान रखा है। तुम उन्हें संभालते हो तुम डरते हो कहीं वह चोरी न चले जायें, तुम उन्हें बचाते हो, और तुमने सब तरह के पहरे लगा रखे हैं। तुमसे बड़ा तुम्हारा और कोई दुश्मन नहीं है। फिर भी तुम्हारी पीड़ा सच है, तुम तड़पते हो उसमें कोई झूठ नहीं, तुम बाहर निकलना चाहते हो—वह आयोजन, वह आकांक्षा भी है। लेकिन तुम्हें यह पता नहीं कि बाहर निकलने में तुम भी बाधा डालते हो। तुम उस आदमी की भांति हो जो दौड़ना चाहता हो लेकिन अपने पैरों में जंजीर बांध रहा हो और शायद सोचता हो कि जंजीरें बांधने से पैर मजबूत होंगे और मैं ठीक से दौड़ सकूंगा। तुम अपने ही विपरीत बहुत कृत्यों में लगे हो यही मनुष्य का दुःख है। वह सोचता है, जो मैं कर रहा हूं वह हितकर है और उससे कल्याण सिद्ध होता है। और जब तक तुम्हें यह साफ न हो जाये तब तक तुम्हारी पीड़ा का कोई अंत नहीं हो सकता। एक बात समझ लेनी बहुत गहरे में जरूरी है कि तुम्हारी पीड़ा के निर्माता तुम ही हो, कोई दूसरा नहीं, तुम ही हो जिम्मेवार, दायित्व तुम्हारा है। पीड़ा के बीज तुम बोते हो, लेकिन बीज बोते समय तुम सोचते हो कि तुम आनंद के बीज बो रहे हो, क्योंकि बीज में तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता न पीड़ा न आनंद। बीज तो बंद है। जब तुम बीज बोते हो तब तुम आनंद के सोच के बोते हो, वर्षा बाद जब फल आने शुरू होते हैं, तो दुःख आता है तो तुम सोचते हो यह दुःख किसने दिया, और बीज में और फलों के आने में इतना फासला है कि तुम भूल चुके होते हो कि बीज तुमने बोये। फासला इतना ज्यादा है, बीज और फल इतने भिन्न हैं कि तुम याद भी कैसे रखो कि ये वे ही बीज हैं जो हमने बोये थे। अक्सर तुम सोचते हो हमारे आनंद के बीज तो व्यर्थ चले गये, सड़ गये, गल गये, ठीक भूमि उन्हें न मिली और यह दुःख के बीज जो दूसरों ने हम पर फेंके थे, वे फल गये।

एक दूसरी आकाश गंगा

ध्यान की साधनामयी गहराइयों से अज्ञात के काव्य संकेत

□ *अरविंद कोरडे*
कलोल (उ० गु०)

पल
दो पल
मौन शांत
चक्षुओं की
आभा बंद।

एक कोमल
शीत लहर की
लपक।

चक्षुओं की
भीतर-बाहर
और फिर—
पूरे अस्तित्व में
एक शीत प्रवाह का संचार।

एहसास
करता हूं
मधुमास की
फूटी
कोमल टहनी सी
भावना की
कोमल कोमल
अंकुर
यत्र तत्र सर्वत्र।

मधुर रव
समझदारी का।

एक करुणामयी
सरिता का तट
जैसे
किसी उल्काओं से
या
स्वर्ग की आकाश गंगा से
शिव की दीर्घ केश राशि से
या
कैलाश के हिम प्रपातों से
निकली
मेरे भीतर की एक सरिता
अनन्त अगोचर अनुपम
मुक्त दिशाओं से निकलकर
बह रही है
अवनि से ऊपर नक्षत्रों से परे
आकाश से दूर...दूर...दूर
कोई अगम्य अदृश्य
शीतल निशिगंधा सी चारु
मंद मादक तेजोमयी
दिव्य उल्का प्रदेश में।

★

मिलें मुल्ला नसरुद्दीन से

मुल्ला नसरूद्दीन को बचपन से ही गाली देने की आदत थी, जो बड़े होने पर भी नहीं छूटी। उसकी पत्नी बड़ी परेशान थी और सुधार के लिए किसी अवसर की तलाश में थी।

एक दिन तस्वीर टांगते समय मुल्ला की हथौड़ी कील की बजाय उसके अंगूठे पर पड़ी और उसने चुन–चुन कर गाली बकनी आरंभ की। पत्नी चुपचाप सुनती रही और फिर मुल्ला के चुप हो जाने पर उसने उन सब भद्दी और बेहूदी गालियों को अत्यन्त रस पूर्वक दुहराया। सोचा था उसने कि इससे मुल्ला को निश्चय ही धक्का लगेगा और शायद वह अपनी आदतों में सुधार भी कर ले।

और नसरूद्दीन को धक्का लगा भी क्योंकि वह अत्यन्त गंभीरता से बोला : "देवी गालियां तो तुमने ठीक याद कर लीं, लेकिन अभी देने का ढ़ंग नहीं आया है।"

★

★ एक प्रेम आमंत्रण ★

अ न 'युक्रांद' के प्रेमी सुविज्ञ एवं अनुभूति संपन्न साधक हैं और आध्यात्मिक यात्रा में सतत् गति हो रही है। इन अनुभवों को आप अपनी लेखनी द्वारा—पृष्ठ के एक ओर लिखकर मय अपने चित्र सहित, 'युक्रांद' के अन्य प्रेमी साधकों को साधना की अविरल धारा से परिचित करायें।

इस क्रम को युक्रांद अनवरत चलाएगा ताकि भगवान श्री का प्रसाद जिस अमृत आनन्द को प्रस्फुटित कर रहा है वह जीवन से किस भांति अभिव्यक्त हो रहा है, यह ज्ञात हो सके।

इस धारा का शीर्षक होगा—"भगवान श्री - अध्यात्म और मेरी य त्रा"।

आशा है आपका प्रसाद 'युक्रांद' के पृष्ठों को आपकी 'भावना निधि' के साथ शीघ्र मिलेगा।

निवेदक :
सपादक : 'युक्रांद'

स्वामी वैराग्य अमृत कीर्तन मंडली

द्वारा राजस्थान की आनंददायक भ्रमण
परिसमाप्ति पर

दि. ७, ८ एवं ९ मार्च, ७९ को चित्तौड़गढ़ (राज०) में

'ध्यान योग शिविर'

का आयोजन

संयोजक : जीवन जागृति केन्द्र द्वारा श्री हीरालाल कोठारी, कोठारी निकुन्ज, १८।१८२, दांता भैरू, उदयपुर (राज०)

लसी मानस प्रकाशन की उपलब्धियां

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

-तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) ३—००
२. ज्ञान साधना : ३—००
३. विज्ञान से ज्ञान : १—००
४. वेदान्त-नवनीत : ३—००
५. वेदान्त का सरल बोध : २—००
६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ४—००
७. आध्यात्मिक डायरी १९७४ ६—००
८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिंदी-इंग्लिश) पाकेट बुक ६—००
९. मुमुक्षु (शिक्षाप्रद उपन्यास) ५—००
१०. मन की शांति (पद्य) : अंग्रेजी 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद ४—००
११. हमारी परंपरा : २—००
१२. आराम सुख शांति और आनंद : १—००
१३. Ease Peace Happiness and Bliss (English) 0–25
१४. अपनी ओर इशारा : १—००
१५. व्यवहारिक जीवन और परमात्मा : १—००
१६. श्मशान यात्रा : १—००
१७. मेरे १०८ गुरु : ३—००
१८. सजगता : १—००
१९. अविरोध-निरोध और स्वबोध : २—००
२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन: २—००
२१. चिंता और निश्चिंतता : २—००
२२. मन के पार : विकट प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर : १—००
२३. घर-घर की समस्या : २—००
२४. पीस आफ माइन्ड : (अंग्रेजी में) ५—००
२५. क्वायटर मोमेन्ट्स : (अंग्रेजी में) : २—००
२६. मनन योग्य बातें : १—००
२७. उनके सान्निध्य में : २—००
२८. जाग रे जाग ४—००
२९. जाग्रत-जाग्रत : ०—५०
३०. आधुनिक वेदान्त : २—००
३१. आंखों देखी २—००
३२. बात-बात में बात (आध्यात्मिक उपन्यास) ३—००
३३. अध्यात्म—नवनीत २—००
३४. साधना शिविर ३—००
३५. ज्ञान प्रेम १—००
३६. 'मनन' आध्यात्मिक मासिक वार्षिक शुल्क : ६—००

ग्राहक एवं एजेन्ट्स एवं पुस्तक विक्रेता पत्र-व्यवहार करें

तुलसी – मानस – प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी

गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई—१०

भगवान रजनीश आश्रम

१७, कोरेगांव पार्क, पूना–१ (महा०)

फोन : २२८४५

भगवान रजनीश के अमृत आनन्द से परिप्लावित

★ *प्रवचन माला* ★

अंग्रेजी भाषा में :

१ मार्च से १० मार्च ७५ तक ○ प्रतिदिन सुबह ८.३० से

'The Alpha and the Omega'

प्रवेश : प्रति व्यक्ति ५ रु० दान-पत्र द्वारा।

समाधि साधना शिविर

११ मार्च से २० मार्च, ७५ तक

हिन्दी भाषा में :

प्रवचन विषय : *'कस्तूरी कुण्डल बसे'*

✠ *कार्यक्रम* ✠

शिव नेत्र ध्यान, त्राटक ध्यान, कीर्तन ध्यान,
मौन सक्रिय ध्यान एवं टेप प्रवचन आदि।

(प्रवेश शुल्क : १००/- प्रति साधक।
आवास-भोजन शुल्क १० दिन का १२५/- रु०)

☐ विस्तृत जानकारी हेतु उपर्युक्त पते पर मा योग लक्ष्मी से सम्पर्क करें।